प्रथम अध्याय .

भाषा शिक्षण : स्वरूप एवं विकास

भाषा शब्द संस्कृत के 'भाष्' धातु से बना है जिसका अर्थ है 'बोलना'। अत: भाषा का सामान्य अर्थ हुआ अपने विचारों या भावों को बोलकर प्रकट करना। अपने विचारों को प्रकट करने के लिए जिन ध्वनि संकेतों का प्रयोग किया जाता है उनका यादृच्छिक रूप ही लिपि है और यही लिपि भाषा का लिखित रूप है। अर्थात् भाषा विचारों, भावों के आदान-प्रदान का साधन है। अतः भाषा का स्वरूप ध्वन्यात्मक है। भाषा के द्वारा मनुष्य अपने विचारों, भावों तथा अनुभवों को ध्वनि संकेतों के माध्यम से प्रकट करता है। यद्यपि हाथ, पैर, आँख, नाक, सिर आदि अंग संचालन द्वारा भी हम अपने भावों को प्रकट करते हैं तथापि ध्वनि संकेतों के माध्यम से ही हम पूर्ण रूप से अपना सम्प्रेषण कर पाते हैं। प्रस्तुत अध्याय में भाषा के स्वरूप को दर्शाते हुए भाषा को विभिन्न वर्गों में विभक्त किया गया है, जैसे - व्यक्तिगत बोली, उपबोली, बोली, उपभाषा, मानक भाषा, राष्ट्रीय भाषाएँ, साहित्यिक भाषा, मातृभाषा, राष्ट्रभाषा, राजभाषा, अंतर्राष्ट्रीय भाषा, यांत्रिक भाषा, लिखित भाषा आदि। संस्कृत आचार्यों, आधुनिक भारतीय वैयाकरणों, पाश्चात्य विद्वानों आदि विभिन्न भाषाविदों तथा अन्य विद्वानों द्वारा समय-समय पर दी गई भाषा की संरचना और भाषा प्रकार्य को भी विस्तृत रूप से दिखाते हुए हिन्दी भाषा की उत्पत्ति एवं विकासयात्रा पर पुनः प्रकाश डाला गया है।

1.1 भाषा का स्वरूप

विभिन्न आधारों पर भाषा के अनेक रूप देखे जा सकते हैं। भाषा के रूप में वैविध्य के विषय में डॉ॰ भोलानाथ तिवारी का मंतव्य उद्धरणीय है - "मिश्रण, बोधगम्यता, श्रवण एवं संस्कृति आदि आधारों पर भाषा के सैकड़ों भेद-उपभेद हो सकते हैं।"[1]

प्रयोग के आधार पर भाषा को मुख्यतः निम्नलिखित वर्गों में विभक्त कर सकते हैं -

1.व्यक्तिगत बोली (Indialect) : यह भाषा का लघुतम रूप है। यह व्यक्ति विशेष की बोली है। हर व्यक्ति की अपने परिवेश, रहन-सहन, प्रवृत्ति अनुसार अपनी अलग बोली होती है, अपना अलग अस्तित्व होता है।

2.उपबोली (Sub-Dialect) : किसी सीमित क्षेत्र के लोगों के द्वारा प्रयुक्त इस भाषा को उपबोली की संज्ञा दी जाती है। स्थान विशेष में प्रयुक्त होने के कारण भौगोलिक आधार पर इसे स्थानीय बोली (Local Dialect) भी कहते हैं। इस भाषा में एक स्थान विशेष के विभिन्न लोगों में पाई जाने वाली समान विशेषताएँ उपलब्ध होती हैं। इस भाषा में व्यक्ति विशेष की बोली को महत्व न देकर स्थान विशेष के समग्र लोगों की बोली को महत्व देते हैं। कभी-कभी स्थान या जनपद विशेष की भाषा को उपबोली कहते हैं, यथा - अंबालवी, सुलतानपुरी आदि।

3.बोली (Dialect) : बोली भाषा का प्रारम्भिक रूप है। इसे उपभाषा के समीप भी कहा जा सकता है। बोली सीमित क्षेत्र में बोली जाने वाली (आंचलिक) भाषा का रूप है जो लोक साहित्य में प्रयुक्त होती है। जैसे अवधी, राजस्थानी, छत्तीसगढ़ी आदि हिन्दी की बोलियाँ ही हैं।

बोली के प्रयोगकर्ताओं की संख्या से उपबोली के प्रयोगकर्ताओं की संख्या कहीं अधिक होती है, क्योंकि कई उपबोलियों का संयुक्त रूप ही बोली होता है। इसे दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि एक बोली के अंतर्गत कई उपबोलियाँ आती हैं। एक बोली के अंतर्गत आने वाली विभिन्न क्षेत्रों की उपबोलियों के लोग आपस की भाषा को सरलता से समझ लेते हैं क्योंकि एक बोली की विभिन्न उपबोलियों की ध्वनि, शब्द, पद, वाक्य तथा अर्थ-संरचना में पर्याप्त समानता होती है।

बोलियों के उद्भव और विकास का मुख्य आधार है - एक भाषा-भाषियों का दो या दो से अधिक स्थानों पर दूर-दूर का बस जाना। उन विभिन्न स्थानों की भाषा में जब उनकी

परिस्थितियों के अनुसार धीरे-धीरे पर्याप्त परिवर्तन हो जाता है, तो बोलियों का विकास होता है।

बोली का विशेष महत्व होता है, क्योंकि मनुष्य की भाषा सहज होती है। कोई भी व्यक्ति जिस बोली-क्षेत्र से सच्चे अर्थ से जुड़ा होगा, वह उसमें अपने भावों को अपेक्षाकृत कहीं अधिक प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करता है। बोली में तत्संबंधित क्षेत्र की सांस्कृतिक तथा सामाजिक प्रभाव पड़ता है, वह इसकी अपनी महत्वपूर्ण विशेषता है। बोली ही विकसित होकर भाषा का रूप धारण करती है। पूर्वकालीन अवधी, ब्रज आदि बोलियाँ भाषा बनी हैं। खड़ीबोली को राजनीतिक और सामाजिक संरक्षण मिला, तो उसे राजभाषा का पद प्राप्त हो गया।

4.उपभाषा/विभाषा (Sub-Language) : जब कोई बोली अपनी सीमाओं का अतिक्रमण कर उच्च साहित्यिक रचनाओं में अपना स्थान बना लेती है तथा अधिसंख्यक लोगों द्वारा प्रयुक्त की जाने लगती है तब वह विभाषा या उपभाषा कहलाने लगती है।

5.भाषा (Language) : जिस प्रकार उपबोली से बोली का क्षेत्र विस्तृत होता है तथा प्रयोगकर्ताओं की संख्या भी अधिक होती है, उसी प्रकार बोली से भाषा का क्षेत्र विस्तृत होता है तथा प्रयोगकर्ताओं की संख्या भी अधिक होती है। सामान्यतः समान विशेषताओं वाली कई बोलियों का समूह भाषा है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि एक भाषा के अंतर्गत कई बोलियाँ आती हैं; यथा - हिन्दी भाषा के अंतर्गत ब्रज, अवधी, हरियाणवी आदि बोलियाँ आती हैं। भाषा-निर्माण की प्रक्रिया सायास होती है। जब किसी बोली को राजनीतिक, साहित्यिक और धार्मिक आदि आन्दोलनों का सुदृढ़ आधार मिल जाता है, तो उसके प्रयोग की सीमा बढ़ जाती है, उसका साहित्यिक रूप उभर आता है तब बोली उच्च पद पाकर भाषा बन जाती है।

भाषा और बोली के अंतर को इस प्रकार रेखांकित कर सकते हैं :

क . भाषा का क्षेत्र व्यापक होता है, जबकि बोली का क्षेत्र सीमित होता है।

ख . सामाजिक प्रकार्य में बोली 'भाषा' के अधीन होती है।

ग . भाषा समाज में प्रतिष्ठा और प्रभुता की द्योतक होती है, जबकि बोली का प्रयोग 'आत्मीयता' का व्यंजक होता है।

घ . भाषा का प्रयोग औपचारिक संदर्भों में होता है, जबकि बोली का प्रयोग प्रायः अनौपचारिक संदर्भों में होता है।

ङ . भाषा का एक विशेष व्याकरण अथवा नियम होता है, बोली का कोई विशेष व्याकरण प्रायः नहीं होता।

च . एक भाषा की अनेक बोलियाँ हो सकती है, बोली विकसित होकर भाषा का स्वरूप प्राप्त कर लेती है।

छ . भाषा का लिखित साहित्य होता है, बोली का लिखित साहित्य प्रायः नहीं होता।

ज . भाषा का प्रयोग शिक्षण तथा शासन में होता है, जबकि बोली बोलचाल तक सीमित रूप में ही प्रयुक्त होती है।

झ . हिन्दी, अंग्रेज़ी भाषाएँ हैं जबकि ब्रजभाषा, अवधी, भोजपुरी आदि बोलियाँ हैं।

6.मानक भाषा (Standard Language) : जो भाषा व्याकरण-सम्मत, शुद्ध, परिनिष्ठित, परिमार्जित होती है, मानक भाषा कहलाती है। मानक भाषा एक विशेष क्षेत्र के लोगों को एक सूत्र में बाँधती है जिससे उनमें आत्मीयता और समानता का भाव बढ़ता है। इस स्थान पर पहुँचने के लिए भाषा को कई प्रक्रियाओं से गुज़रना पड़ता है। पहले स्तर में भाषा का मूल रूप 'बोली' होता है। इसका क्षेत्र सीमित होता है तथा इसकी कोई व्याकरणिक संरचना निश्चित नहीं होती। इसका प्रयोग प्रायः बातचीत में ही किया जाता है। विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक कारणों से कई बार बोली का प्रयोग-क्षेत्र विस्तृत होने लगता है।

इसके कारण उसके लिखित रूप का महत्त्व बढ़ जाता है। उसके व्यवहार-निर्माण का प्रयास होने लगता है। साहित्य-रचना प्रारम्भ हो जाती है। व्यवसाय, प्रशासन, शिक्षा आदि में उसे माध्यम रूप में अपना लिया जाता है और दैनंदिन व्यवहार में उसका प्रयोग बढ़ जाता है। अन्य बोली क्षेत्रों के लोग उसे सीखने का प्रयास आरंभ कर देते हैं। इस स्तर पर बोली मानकीकरण की दिशा में एक कदम आगे बढ़कर भाषा का रूप ले लेती है। अगले स्तर पर भाषा पूर्ण मानक बन जाती है। उसके व्याकरणिक रूप निश्चित हो जाते हैं। उसका प्रयोग-क्षेत्र विस्तृत हो जाता है। वह पूर्ण रूप से शिक्षा, प्रशासन, व्यवसाय, पत्राचार, पत्रकारिता की भाषा बन जाती है। शिष्ट समाज में, साहित्य-संगोष्ठी में, ज्ञान-विज्ञान में भाषा के इसी रूप का प्रयोग किया जाता है। भाषा-शास्त्र के साथ ही इसका साहित्य-शास्त्र भी बन जाता है। शास्त्र और विज्ञान की तकनीकी शब्दावली का विकास होने लगता है। मानक भाषा अन्य बोलियों और देशी-विदेशी भाषाओं के शब्दों को अपने में समा लेती है।

7.राष्ट्रीय भाषाएँ : प्रत्येक राष्ट्र की एक राष्ट्रभाषा होती है किन्तु अनेक राष्ट्रीय भाषाएँ हो सकती हैं। इन भाषाओं को संविधान से मान्यता प्राप्त होती हैं। भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी है और बाईस भाषाओं को राष्ट्रीय भाषाओं की मान्यता प्राप्त है जो हैं- बंगला, पंजाबी, तमिल, कन्नड़, मलयालम, असमिया, उड़िया, कश्मीरी, गुजराती, मराठा, सिंधी, नेपाली, कोंकणी, मणिपुरी, बोड़ो, संथाली, मैथिली, डोगरी, संस्कृत, हिन्दी और उर्दू।

8.साहित्यिक भाषा (Litrerary Language) : इस भाषा का प्रयोग साहित्य में होता है। यह भाषा कुछ कम परिष्कृत तथा परंपरानुसार हो सकती है। मानक भाषा तथा साहित्यिक भाषा, दो अलग भाषाएँ हो सकती हैं तथा मानक भाषा में भी साहित्य की रचना हो सकती है।

9.मातृभाषा (Mother Tongue) : जिस भाषा को बच्चा अपनी माँ, अपने परिवार जनों तथा पास-पड़ोस से सीखता है, वह मातृभाषा कहलाती है। बच्चा इस भाषा को बिना प्रयास के सहज रूप में ग्रहण करता है तथा इस भाषा में उसकी सहज अभिव्यक्ति-कौशल होती है।

10.राष्ट्रभाषा (National Language) : जो भाषा किसी देश के अधिकतर लोगों द्वारा प्रयोग में लाई जाती है, वह राष्ट्रभाषा कहलाती है। देश के विभिन्न क्षेत्रों के लोग भावाभिव्यक्ति के लिए तथा सार्वजनिक कार्यों में राष्ट्रभाषा का प्रयोग करते हैं। किसी देश की उन्नति बहुत कुछ राष्ट्रभाषा की उन्नति पर निर्भर होती है। देश का अधिकांश साहित्य राष्ट्रभाषा में रचा जाता है। हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा है तथा हिंदीतर भाषी भी अपनी-अपनी भाषाओं के साथ हिन्दी का प्रयोग करते हैं (यद्यपि भारतीय संविधान द्वारा हिन्दी को राष्ट्रभाषा नहीं स्वीकारा गया है)। राष्ट्रभाषा पूरे देश के लोगों को एक सूत्र में बाँधती है और इसी के कारण इसे संपर्क भाषा भी कहा जाता है।

11.राजभाषा (Official Language) : देश या प्रदेश के राजकाज की भाषा को राजभाषा कहा जाता है। इसका प्रयोग राजकीय कार्यों में किया जाता है। भारत के अलग-अलग राजभाषाएँ होते हुए भी हिन्दी ही राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठित है। हिन्दी को संघ की राजभाषा 14 सितम्बर, 1949 को घोषित किया गया। हिन्दी को राजभाषा का संवैधानिक रूप मिल तो गया, परंतु अभी भी हिन्दी भाषा में कार्य उस रूप में नहीं होता जो राजभाषा के रूप में होना चाहिए।

12.अंतरराष्ट्रीय भाषा (International Language) : मुख्य रूप से व्यापार की दृष्टि से जब दो या दो से अधिक देशों में एक भाषा का प्रयोग होता है, तो वह अन्तरराष्ट्रीय भाषा कहलाती है अर्थात् जब दो देशों के लोग आपस में विचार-विनिमय के लिए कोई

एक भाषा अपनाती है, तब वह भाषा अन्तरराष्ट्रीय भाषा बन जाती है। अंग्रेज़ी अन्तरराष्ट्रीय भाषा के रूप में मानी जाती है।

13.यांत्रिक भाषा (Technical Language): जो भाषा यंत्रों द्वारा संचालित होती है, वह यांत्रिक भाषा कहलाती है।

14.लिखित भाषा (Written Language): जिस भाषा की कोई विशिष्ट लिपि होती है, वह लिखित भाषा कहलाती है। भाषा तभी अमर रहती है, जब उसका कोई लिखित रूप हो।

1.2 भाषा की परिभाषा :

विभिन्न भाषाविदों तथा अन्य विद्वानों द्वारा समय-समय पर दी गईं भाषा की परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं -

क.संस्कृत आचार्यों की परिभाषाएँ :

1.महर्षि पतंजलि ने पाणिनि की अष्टध्यायी के महाभाष्य में भाषा की परिभाषा को इस प्रकार व्यक्त किया है -"व्यक्ता वाचि वर्णा येषां त इमे व्यक्तवाच:।"[2]

अर्थात् जब हम बोलते हैं, जो वर्ण स्पष्ट होते हैं, वहीं भाषा है।

2.भर्तृहरि ने शब्द, उत्पत्ति और ग्रहण के आधार पर भाषा को परिभाषित किया -

"शब्द कारणमर्थस्य स हि तेनोपजन्यते।

तथा च बुद्धिविषयादर्थाच्छब्ध: प्रतीयते।

बुद्धयर्थदेव बुद्धयर्थे जाते तदानि दृश्यते।"[3]

अर्थात् शब्द के द्वारा अर्थ की सृष्टि होती है और बुद्धि के द्वारा जिस अर्थ को ग्रहण किया जाता है, वह भाषा कहलाती है।

3.*अमरकोष* में भाषा को वाणी का पर्याय बताते हुए कहा गया है - "ब्राह्मी तु भारती भाषा गीर् वाक् वाणी सरस्वती।"[4]

अर्थात् संस्कृत भाषा ही वाणी है और वाणी ही सरस्वती है।

4.*न्यायशास्त्र* में भाषा की परिभाषा करते समय अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असंभव दोषों से बचने की सलाह दी है - "तदेव हि लक्षणं यद्व्याप्ति-अतिव्याप्ति

असंभवरूप-दोषत्रय शून्यम्।"[5]

अर्थात् अव्याप्ति, अतिव्याप्ति, असंभव इन तीनों दोषों के शून्य होने पर ही संज्ञा पूर्ण होगी।

5.आचार्य कपिल ने भाषा के लिए कहा है - "स्फुटवाक्करणोपात्तो, भावाभिव्यक्तिसाधकः

संकेतितोध्वनिव्रातः सा भाषेत्युच्यतेबुधैः।।"[6]

अर्थात् जो शब्द मुख से उच्चरित होता है, वही भाव है। ज्ञानी लोग इसी ध्वनि द्वारा संकेतित शब्द को भाषा कहते हैं।

6.सुकुमार सेन के अनुसार - "अर्थवान कंठोद्गीर्ण ध्वनि-समष्टि ही भाषा है।"[7]

अर्थात् अर्थ-पूर्ण ध्वनि ही भाषा है।

ख.आधुनिक भारतीय वैयाकरणों तथा भाषाविदों की परिभाषाएँ :

1.पं॰ कामताप्रसाद गुरु ने '*हिन्दी व्याकरण*' के पृष्ठ 1 पर भाषा की परिभाषा इस प्रकार दी है - "भाषा वह साधन है जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचार दूसरों पर भली-भाँति प्रकट कर सकता है और दूसरों के विचार आप स्पष्टतया समझ सकता है।"[8]

2.आचार्य किशोरीदास वाजपेयी के अनुसार -"विभिन्न अर्थों में सांकेतिक शब्द समूह ही भाषा है जिसके द्वारा हम अपने विचार या मनोभाव दूसरों के प्रति बहुत सरलता से प्रकट करते है।"[9]

3.डॉ॰ श्यामसुंदर दास ने '*भाषा विज्ञान*' में भाषा के विषय में लिखा है -"मनुष्य और मनुष्य के बीच वस्तुओं के विषय में अपनी इच्छा और मति का आदान-प्रदान करने के लिए ध्वनि संकेतों का जो व्यवहार होता है, उसे भाषा कहते हैं।"[10]

4.डॉ॰ भोलानाथ तिवारी ने भाषा को परिभाषित करते हुए '*भाषा विज्ञान*' में लिखा है - "भाषा उच्चारण अवयवों से उच्चरित मूलतः प्रायः यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की वह व्यवस्था है, जिसके द्वारा किसी भाषा-समाज के लोग आपस में विचारों का आदान-प्रदान करते हैं।"[11]

5.आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा ने *'भाषा विज्ञान की भूमिका'* में लिखा है - "उच्चरित ध्वनि-संकेतों की सहायता से भाव या विचार की पूर्ण अभिव्यक्ति भाषा है।"[12]

6.डॉ॰ सरयूप्रसाद अग्रवाल के अनुसार - "भाषा वाणी द्वारा व्यक्त स्वच्छंद प्रतीकों की वह रीतिबद्ध पद्धति है, जिससे मानव-समाज में अपने भावों का परस्पर आदान-प्रदान करते हुए एक दूसरे को सहयोग देता है।"[13]

7.डॉ॰ देवीशंकर द्विवेदी के अनुसार - "भाषा यादृच्छिक वाक्यप्रतीकों की वह व्यवस्था है जिसके माध्यम से मानव समुदाय परस्पर व्यवहार करता है।"[14]

8.पी॰ डी॰ गुणे के अनुसार - "ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा हृदयगत भावों तथा विचारों का प्रकटीकरण भाषा है।"[15]

9.दुनीचंद ने '*हिन्दी व्याकरण*' में भाषा की परिभाषा को इस प्रकार लिपिबद्ध किया है - हम अपने मन के भाव प्रकट करने के लिए जिन सांकेतिक ध्वनियों का उच्चारण करते हैं, उन्हें भाषा कहते हैं।"[16]

10.डॉ॰ बाबूराम सक्सेना के मतानुसार - "जिन ध्वनि-चिह्नों द्वारा मनुष्य परस्पर विचार-विनिमय करता है, उसे भाषा कहते हैं।"[17]

11.डॉ॰ रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव के अनुसार - "भाषा वागेन्द्रिय द्वारा निःसृत उन ध्वनि प्रतीकों की संरचनात्मक व्यवस्था है जो अपनी मूल प्रकृति में यादृच्छिक एवं रूढ़िपरक होते हैं और जिसके द्वारा किसी भाषा समुदाय के व्यक्ति अपने अनुभवों को व्यक्त करते हैं, अपने विचारों को संप्रेषित करते हैं। और अपनी सामाजिक अस्मिता, पद तथा अंतर वैयक्तिक सम्बन्धों को सूचित करते हैं।"[18]

ग.पाश्चात्य विद्वानों की परिभाषाएँ :

1.प्लेटो ने विचार को भाषा का मूलाधार मानते हुए कहा है - "विचार आत्मा की मूक बातचीत है, पर वही जब ध्वन्यात्मक होकर होंठों से प्रकट होती है, तो उसे भाषा की संज्ञा देते हैं।"[19]

2.मैक्समूलर के अनुसार - "भाषा और कुछ नहीं है, केवल मानव की चतुर बुद्धि द्वारा आविष्कृत ऐसा उपाय है जिसकी मदद से हम विचार सरलता और तत्परता से दूसरों पर प्रकट कर सकते हैं और चाहते हैं कि इसकी व्याख्या प्रकृति कि उपज के रूप में नहीं बल्कि मनुष्यकृत पदार्थ के रूप में करना उचित है।"[20]

3.ब्लाक और ट्रेगर के शब्दों में - "A language is a system of arbitrary vocal symbols by means of which a social group cooperates."[21] अर्थात् भाषा

मुखोच्चरित यादृच्छिक ध्वनि-प्रतीकों की वह व्यवस्था है, जिसके माध्यम से एक समुदाय के सदस्य परसपर विचार विनिमय करते हैं।"

4.हेनरी स्वीट का कथन है - "Language may be defined as expression of thought by means of speech - sound."[22] अर्थात् जिन व्यक्त ध्वनियों द्वारा विचारों की अभिव्यक्ति होती है, उसे भाषा कहते हैं।

5.ए॰ एच॰ गार्डिनर का मन्तव्य है - "The common definition of speech is the use of articulate sound symbols for the expression of thought."[23]अर्थात् विचारों की अभिव्यक्ति के लिए जिन व्यक्त एवं स्पष्ट ध्वनि-संकेतों का व्यवहार किया जाता है, उनके समूह को भाषा कहते हैं।

6.चाम्स्की ने कहा है - "I will consider a language to be a set (finite or infinite) of sentences, each finite in length and constructed out of a finite set of elements."[24]

7.स्पीक के अनुसार - "Language is a purely human and non instinctive method of communicating ideas, emotions and desires by means of voluntarily procuced symbols."[25]

8.*इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका* में कहा गया है - "Language may be defined as an arbitrary system of vocal symbols by means of which, human beings, as members of a social group and participants in culture interact and communicate."[26]

9.वेंद्रिए के अनुसार - "भाषा एक तरह का संकेत हैं, संकेत से आशय उन प्रतीकों से है, जिनके द्वारा मानव अपने विचारों को दूसरों पर प्रकट करता है। ये प्रतीक कई प्रकार के

होते हैं जैसे नेत्रग्राह्य, कर्णग्राह्य और स्पर्शग्राह्य । वस्तुतः भाषा की दृष्टि से कर्णग्राह्य प्रतीक ही सर्वश्रेष्ठ हैं।"[27]

10.जेस्परसन के अनुसार - "मनुष्य ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा अपने विचार प्रकट करता है। मानव मस्तिष्क वस्तुतः विचार प्रकट करने के लिए एसे शब्दों का निरंतर उपयोग करता है। इस प्रकार के कार्य-कलाप को ही भाषा की संज्ञा दी जाती है।"[28]

ऊपर दिए गए भाषा की परिभाषाओं से यह कह सकते हैं कि भाषा उच्चारण अवयवों से उच्चरित ध्वनि प्रतीकों की संरचनात्मक व्यवस्था है जो यादृच्छिक है। भाषा के कारण व्यक्ति अपनी सामाजिक अस्मिता, पद तथा अंतर-वैयक्तिक सम्बन्धों को सूचित कर्ता है, अर्थात् कहा जा सकता है भाषा वह माध्यम है जिसके द्वारा मनुष्य ध्वनि संकेतों कि मदद से विचारों तथा भावों का आदान-प्रदान करते हैं।

1.3 भाषा की प्रकृति / प्रवृत्ति / अभिलक्षण :

भाषा की प्रकृति से तात्पर्य है भाषा की सामान्य विशेषताएँ। विश्व के अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग भाषाएँ बोली जाती हैं, तथापि भाषा का जो सामान्य लक्षण तथा गुण है वही भाषा की प्रकृति है। भाषा की प्रकृति जो विश्व की सभी भाषाओं में पाई जाती है, निम्नलिखित है -

1.भाषा प्रतीकात्मक है - जब कोई शब्द से किसी विशिष्ट अर्थ का बोध हो, तो वह प्रतीक कहलाता है। इसका शब्द के गुण से कोई संबंध नहीं होता बल्कि उस विशेष वस्तु को प्रतीकित करने के लिए इसका प्रयोग होता है। उदाहरण के लिए पंकज और जलज शब्द दोनों 'कमल' के पर्याय हैं जबकि दोनों का अर्थ क्रमशः कीचड़ में पैदा होने वाला और जल में पैदा होने वाला है। प्रतीक के बारे में प्रसिद्ध विद्वान पीयर्स का कथन है "A sign is something that stands to somebody for something else in some respect or capacity."[29]

प्रतीक की अवधारणा को समझने के लिए तीन ईकाइयों - 'संकेतित वस्तु', 'संकेतार्थ' और 'संकेत प्रतीक' के सम्बन्धों को समझना होगा जिसे त्रिवर्गीय संकेतन संबंध कहा जाता है। बाह्य जगत में स्थित इकाई को 'संकेतित वस्तु' कहा गया, जैसे फूल, हाथी आदि। प्रयोगकर्ता के मन में स्थित उस इकाई की संकल्पना को 'संकेतार्थ' कहा गया और इस संकेतार्थ को अभिव्यक्त करने वाली इकाई ही 'प्रतीक' है जो संकेतित वस्तु के स्थान पर कुछ विशेष संदर्भों में प्रयुक्त होती है।

संकेतित वस्तु (बाह्य जगत में स्थित फूल, हाथी आदि)

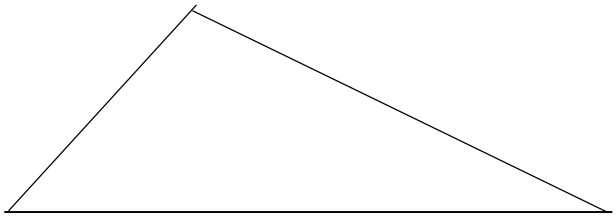

संकेतार्थ (प्रयोगकर्ता के मन में स्थित हाथी) प्रतीक (शब्द रूप में प्रयुक्त हाथी)

2.भाषा सामाजिक संपत्ति है - भाषा का मुख्य उद्देश्य है - विचारों का आदान-प्रदान और इसी से एक समाज का निर्माण होता है। समाज में रहने के लिए भाषा की ज़रूरत होती है और किसी की भाषा से उसके समाज के बारे में जाना जा सकता है। बच्चा जिस समाज में पैदा होता है तथा उसमें रहता है, उसी की भाषा सीखता है।

3.भाषा पैतृक संपत्ति नहीं है - कुछ लोगों का मानना है कि जिस तरह मकान, पैसा आदि पुत्र की पैतृक संपत्ति होती है, उसी प्रकार भाषा भी पैतृक संपत्ति है, अर्थात् हिन्दी भाषी माँ-बाप के बच्चे का हिन्दी भाषा की जानकारी अनिवार्य है। परंतु ऐसा नहीं है। अगर

किसी भारतीय बच्चे को पैदा होते ही कहीं विदेश ले जाया जाए और वहीं विदेशी परिवार में उसका लालन-पालन हो तो वह बच्चा उन्हीं की भाषा पहले सीखेगा।

4.भाषा अर्जित संपत्ति है - भाषा परंपरा से प्राप्त संपत्ति है किन्तु यह पैतृक संपत्ति नहीं है अर्थात् मनुष्य को भाषा अर्जित करने के लिए प्रयत्न करना पड़ता है। बिना प्रयत्न के विदेशी तथा देश की अन्य भाषाओं का ज्ञान तो क्या, मातृभाषा का ज्ञान होना भी कठिन है। और प्रयत्न करने पर मातृभाषा की तरह ही अन्य भाषाओं को भी अर्जित किया जा सकता है।

5.भाषा-व्यवहार अनुकरण द्वारा सीखी जाती है - बच्चा आसपास के लोगों की ध्वनियों का अनुकरण करके भाषा सीखता है। वैसे व्याकरण आदि पुस्तकों से भी भाषा सीखी जा सकती है लेकिन व्यावहारिक आधार पर सीखी गई भाषा इनकी आधारभूमि है। यदि किसी बच्चे को किसी निर्जन जगह पर छोड़ दिया जाए तो वह भाषा नहीं सीख पाएगा। जिस प्रकार हिन्दी वातावरण में पलने वाला बच्चा हिन्दी सीखता है, इसी प्रकार बंगला वातावरण में पालने वाला बच्चा बंगला सीखता है।

6.भाषा सामाजिक स्तर पर आधारित होती है - हम जिस समाज में रहते हैं, वहीं की भाषा बोलते हैं, अर्थात् अगर हम हिन्दी भाषा को ले, तो समाज अनुसार हिन्दी भाषा का स्तर होता है। यह निर्भर करता है हमारी आर्थिक, व्यावसायिक, शैक्षिक, सामाजिक स्तरों पर। पर शहर में रहने वाला हिन्दी भाषी की भाषा किसी गाँव में रहने वाले हिन्दी भाषी से अलग होगी।

7.भाषा सर्वव्यापक है - बिना भाषा के समाज नहीं बन सकता। दुनिया को चलने के लिए भाषा की ज़रूरत है क्योंकि किसी भी कार्य के करने के लिए भाषा की ज़रूरत होती है।

8.भाषा सदैव प्रवाहमयी है - भाषा गतिशील है। भाषा की तुलना नदी के साथ की गई है जो सदैव प्रवाहमयी है। भाषा में परिवर्तन तो होती रही है, परंतु भाषा को समाप्त नहीं किया जा सकता।

9.भाषा संप्रेषण मूलतः वाचिक है - वाचिक भाषा में आवाज़ के उतार-चढ़ाव तथा भाव-भंगिमाओं के आधार पर सशक्त भावाभिव्यक्ति होती है, इसके विपरीत लिखित भाषा में पूर्ण रूप से भावों की अभिव्यक्ति करना कठिन है। वाचिक भाषा का प्रयोग सबसे अधिक होता है।

10.भाषा चिरपरिवर्तनशील है - संसार की सभी वस्तुओं की तरह भाषा भी परिवर्तनशील है। विभिन्न कालों में भाषा का विभिन्न रूप मिलता है। समय के साथ भाषा में परिवर्तन होता जाता है। भाषा अनुकरण के माध्यम से सीखी जाती है परंतु कई कारणों जैसे अनुकरण की अपूर्णता, शारीरिक तथा मानसिक भिन्नता एवं भौगोलिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों की भिन्नता आदि से मूल भाषा का पूर्ण अनुकरण संभव नहीं होता।

11.भाषा का प्रारम्भिक रूप उच्चरित होता है - भाषा के दो मुख्य रूप हैं - मौखिक और लिखित। इनमें भाषा का प्रारम्भिक रूप मौखिक या उच्चरित है। लिपि का विकास भाषा के जन्म के पर्याप्त समय बाद हुआ। उच्चरित भाषा के लिए लिपि की आवश्यकता नहीं। इसका सबसे बड़ा प्रमाण है कि आज भी ऐसे कई लोग मिल जाएँगे जो उच्चरित भाषा का सुंदर प्रयोग करना जानते हैं परंतु लिपि से अपरिचित है। इससे स्पष्ट होता है कि भाषा का प्रारम्भिक रूप उच्चरित है और परवर्ती रूप लिखित है।

12.भाषा यादृच्छिक होती है - भाषा का अगला अभिलक्षण यादृच्छिकता है। यादृच्छिक का अर्थ है 'जैसी इच्छा हो' अर्थात् माना हुआ। यादृच्छिकता से तात्पर्य है कि स्वन प्रतीक (या यों कहें कि शब्द एवं उससे संबंधी) आशय में कोई तात्विक अथवा तार्किक संबंध

नहीं है। अर्थात् स्वन प्रतीक ऐच्छिक है। जैसे वनस्पति विशेष के लिए प्रयुक्त 'वृक्ष' शब्द स्वन प्रतीक से अभिव्यक्त किया जाता है। उस वास्तविक वनस्पति एवं 'वृक्ष' शब्द में कोई सहजात अथवा तार्किक संबंध नहीं है। अर्थात् यह अनिवार्य नहीं है कि वनस्पति विशेष के लिए केवल इस शब्द विशेष का ही प्रयोग हो। इसके अलावा कोई और शब्द का भी प्रयोग किया जा सकता था। अर्थात् किसी वस्तु या भाव का किसी शब्द से सहज-स्वाभाविक या तर्कपूर्ण संबंध नहीं होता, वह समाज की इच्छानुसार मात्र माना हुआ संबंध है। यदि यह संबंध सहज एवं स्वाभाविक होता तो सभी भाषाओं में एक वस्तु के लिए एक ही शब्द होता। 'वृक्ष' के लिए 'गाछ', 'ट्री' जैसे अनेक शब्द विभिन्न भाषाओं में नहीं होते।

13.क्रमबद्धता - मनुष्य का प्रत्येक कार्य भाषा द्वारा ही संपादित होता है। यह कार्य ध्वनियों के माध्यम से होता है। भाषा की एक अकेली कोई भी इकाई सम्प्रेषण का कार्य नहीं करती, क्योंकि भाषाई स्वन अकेला अपने-आप में सार्थक नहीं होता अपितु उनका समूह या योग ही सार्थक होता है। जब एक या एक से अधिक स्वन विशिष्ट योग या समष्टि बनाते हैं तभी उनसे विचार-विनिमय अथवा अर्थ की अभिव्यक्ति होती है। जैसे हिन्दी का शब्द है 'कलरव', जिसका विशिष्ट अर्थ है, अगर इस शब्द के क्रम को उलट दिया जाए और 'कवलर' बना दिया जाए तो इससे कोई अर्थ नहीं निकलता। भाषा के इस अभिलक्षण के कारण क्रमरहित या अमान्य क्रम में प्रयुक्त स्वन को भाषा के अंतर्गत ग्रहण नहीं किया जाता।

14.भाषा की व्यवस्था - भाषा की सुनिश्चित व्यवस्था होती है, इसी के कारण विशिष्ट भाषिक समूह के व्यक्ति उस भाषा को समान रूप से बोलते हैं। भाषिक व्यवस्था का आयोजन ही भाषिक अध्ययन को भी संभव बनाता है। विभिन्न भागों, शाखाओं के सुचारू क्रियान्वयन के लिए 'व्यवस्था' की आवश्यकता पड़ती है। मानव समाज भी पारस्परिक

व्यवस्था पर ही टिका हुआ है। प्रत्येक व्यवस्था में एकाधिक अंग ध्वनि रूप, शब्द, वाक्य, अर्थ - सभी मिलकर एक व्यवस्था के रूप में कार्य करते हैं। यदि ये सभी अंग मिलकर एक व्यवस्था के रूप में कार्य न करें तो भाषा संभव नहीं हो सकती।

एक भाषा की व्यवस्था दूसरी भाषा की व्यवस्था से नितांत अलग होती है। हिन्दी और अंग्रेज़ी की वाक्य निर्माण पद्धति परस्पर अलग-अलग है। हिन्दी में कर्मपद होते हुए भी क्रिया का प्रयोग वाक्य के अंत में प्रयोग होता है, जबकि अंग्रेज़ी भाषा की व्यवस्था में क्रियापद कर्मपद से पहले आने का नियम है।

15.संपर्क माध्यम - भाषिक सम्प्रेषण मुख्यतः वाचिक और लिखित दोनों रूपों में होता है। भाषा के माध्यम से ही संपर्क संभव हो पाता है। एक समुदाय का व्यक्ति भाषा के द्वारा जो आशय अभिव्यक्त करना चाहता है, उस आशय को उसी भाषिक समुदाय का व्यक्ति ग्रहण कर सकता है। हम भाषा द्वारा ही विचार विनिमय और अभिव्यक्ति करते हैं। ज्ञान, विज्ञान, कला, संस्कृति आदि के सभी अंगों में आवश्यक सूचना देकर समाज को अग्रसर करना ही भाषा का उद्देश्य रहता है।

16.अभिरचना द्वित्व - भाषा का यह अभिलक्षण भाषा के दोहरे स्तर की ओर ध्यान आकृष्ट करता है। पहले स्तर का संबंध कथ्य (अर्थ) से है और दूसरे स्तर का संबंध अभिव्यक्ति माध्यम (ध्वनि) की इकाइयों से रहता है। उदाहरण के लिए यदि विचार की न्यूनतम इकाई 'कमल' है तो उसकी अभिव्यक्ति की न्यूनतम इकाइयाँ क् + अ + म् + अ + ल् + अ है। ध्वनि की इन इकाइयों का अपना कोई अर्थ नहीं होता, केवल इनका अपना रूप और प्रकार्य होता है, जिसके सहारे एक शब्द को दूसरे शब्द से अलग करना संभव है, जैसे - काल, गाल, बाल आदि।

17.अंतर्विनिमयता - भाषा का अस्तित्व तभी संभव है जब कोई एक वक्ता हो और दूसरा श्रोता। बातचीत के दौरान वक्ता और श्रोता की भूमिकाएँ बदलती रहती हैं। एक समय

पर जो वक्ता होता है वह अगले क्षण श्रोता हो जाता है और श्रोता वक्ता की भूमिका ग्रहण कर लेता है।

1.4 भाषा व्यवस्था और भाषा व्यवहार :

भाषा और समाज दोनों एक दूसरे पर आश्रित हैं। भाषा मनुष्य की सर्वोत्तम उपलब्धि है। भाषा के ही माध्यम से मनुष्य सामाजिक बना है। भाषा वैज्ञानिक सस्यूर ने भाषा अध्ययन की पारिभाषिक शब्दावली प्रस्तुत की, जिस पर आगे चलकर त्रुबेत्स्काय, येल्मस्लव तथा चॉम्स्की आदि ने विस्तृत विचार किया। सस्यूर ने भाषा के जिस रूप की कल्पना की वह एक ओर सामाजिक वस्तु है तो दूसरी ओर अपनी प्रकृति में सतत् परिवर्तनशील है। भाषा के सामाजिक होने के कारण उसका एक पक्ष संस्थागत है जिसे सस्यूर ने 'भाषा व्यवस्था' (Langue) की संज्ञा दी तथा भाषा का दूसरा पक्ष परिवर्तनशील है जिसे सस्यूर ने 'भाषा व्यवहार' (Parole) की संज्ञा दी। भाषा व्यवस्था और भाषा व्यवहार एक-दूसरे से भिन्न होकर भी अभिन्न हैं और दोनों मिलकर ही भाषा की संकल्पना निरूपित करते हैं।

हिन्दी की लेखिका श्रीमती गरिमा श्रीवास्तव का कहना है -

"भाषा व्यवस्था (Langue या लाँग) तथा भाषा व्यवहार (Parole या परोल) भाषा के ही दो आयाम हैं। जिसका पारस्परिक अंतर त्रुबेत्स्का, येल्मस्लव तथा चाम्स्की आदि ने स्पष्ट किया। आगे के भाषावैज्ञानिकों ने भाषा व्यवहार को 'वाक्' की संज्ञा दी। यद्यपि प्रसिद्ध भाषावैज्ञानिक डॉ॰ रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव 'भाषा व्यवहार' (Parole) के लिए 'वाक्' को उपयुक्त पारिभाषिक शब्द नहीं मानते क्योंकि यह सस्यूर की भाषा संबंधी संकल्पना को पूरी तरह व्यंजित नहीं करता। फिर भी हिन्दी में इसके लिए क्रमशः भाषा एवं वाक् का ही प्रयोग होता है।"[30]

भाषा व्यवस्था या लाँग (Langue) -

भाषा को व्यवस्थित करने वाला शास्त्र 'व्याकरण' है। यह भाषा भाषिक प्रतीकों की व्यवस्था होती है, जो किसी व्यक्ति के निजी उच्चारण या लेखन से नियंत्रित नहीं होती। सस्यूर यह मानता है कि भाषा व्यवस्था एक सामाजिक संस्थान की तरह एक सामाजिक व्यवस्था है, जो स्वयं में एक प्रतीकबद्ध सामाजिक वस्तु है जो व्यक्ति से जुड़ी रह कर भी व्यक्ति की अपनी सीमा से मुक्त होने के कारण वह अपनी प्रकृति में समरूपी (homogeneous) होती है।

भाषा व्यवहार या वाक् (Parole) -

भाषा व्यवहार वस्तुतः भाषा व्यवस्था का ही व्यक्त रूप होता है। वह मानव सम्बन्धों की तरह ही बहुरूपी और व्यक्तिगत आवश्यकताओं की तरह वैविध्यपूर्ण और विषमरूपी होता है। वह वैयक्तिक सम्बन्धों से जुड़ा होता है। वह भाषा भाषी समाज के व्यक्ति द्वारा प्रयुक्त लाँग का प्रयुक्त या व्यवहृत रूप है। यह भाषा व्यवस्था का प्रयोग या भाषिक निष्पादन (performance) है। जहाँ भाषा व्यवस्था की सत्ता व्यक्ति के मानसिक पक्ष से जुड़ी रहती है वहीं भाषा व्यवहार की सत्ता भौतिक होती है, वास्तविक उच्चारण या लेखन के रूप में होती है। भाषा व्यवहार व्यक्ति सापेक्ष होता है।

भाषा व्यवस्था तथा भाषा व्यवहार के अंतर को निम्नवत् समझा जा सकता है -

भाषा व्यवस्था (Langue)	भाषा व्यवहार (Parole)
1.यह भाषा-भाषियों के मस्तिष्क में भाषिक क्षमता के रूप में होती है। 2.यह समूहगत अनुबंधन होने के कारण सामाजिक यथार्थ है।	1.यह व्यक्ति द्वारा भाषा का व्यवहृत रूप है।

3.भाषा व्यवस्था व्याकरण पर आधारित होती है। 4.भाषा व्यवस्था अमूर्त होती है। 5.लाँग या भाषा व्यवस्था की सत्ता मानसिक होती है। 6.अपनी प्रकृति में मूल्यपरक होने के कारण रूपपरक होती है। 7.यह व्यवस्थापरक होने के कारण अपनी प्रकृति में मानसिक एवं भाषिक क्षमता से युक्त होती है।	2.व्यक्तिजन्य प्रयोग होने के कारण वैयक्तिक यथार्थ है। 3.भाषा व्यवहार लोक सम्मति पर गतिशील होता है। 4.भाषा व्यवहार मूर्त होता है। 5.परोल या भाषा व्यवहार की सत्ता भौतिक होती है। 6.अपनी प्रकृति में नव प्रवर्तनकारी होने के कारण विषमरूपी होती है। 7.यह प्रयोगपरक होने के कारण प्रकृति में व्यवहारजन्य एवं भाषिक प्रतिफलनयुक्त होती है।

1.5 भाषा संरचना और भाषा प्रकार्य :

भाषा-संरचना का मूल आधार संरचनात्मक पद्धति है। जिस प्रकार भवन-रचना में ईंट, सीमेंट, लोहा, मजदूर, कारीगर आदि की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार भाषा-संरचना में ध्वनि, शब्द, पद, वाक्य, प्रोक्ति, अर्थ की अपनी-अपनी भूमिका होती है।

1.ध्वनि-संरचना : ध्वनि भाषा की लघुतम, स्वतंत्र इकाई है। ध्वनियों को दों वर्गों में बांटा गया है - स्वर, व्यंजन

स्वर -

स्वर वे घोष ध्वनियाँ हैं जिनके उच्चारण में हवा अबाध गति से मुख-विवर से निकल जाती है। स्वरों के उच्चारण में व्यंजनों तथा अन्य किसी प्रकार की ध्वनियों की मदद नहीं ली जाती। हिन्दी की स्वर ध्वनियाँ निम्नलिखित हैं :

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ए ऐ ओ औ

अंग्रेज़ी में स्वरों की संख्या पाँच हैं :

a e i o u

व्यंजन -

व्यंजन वे ध्वनियाँ हैं जिनका उच्चारण स्वरों की मदद के बिना नहीं किया जा सकता। इसमें हवा अबाध गति से नहीं निकलने पाती। या तो इसे पूर्ण अवरुद्ध होकर फिर आगे बढ़ना पड़ता है, या संकीर्ण मार्ग से घर्षण खाते हुए निकलना पड़ता है, या एक या दोनों पार्श्वों से निकलना पड़ता है या किसी भाग को कंपित करते हुए निकलना पड़ता है।

हिन्दी की व्यंजन ध्वनियाँ :

स्पर्श :	क् (क़)	ख्	ग्	घ्			
	ट्	ठ्	ड्	ढ्			
	त्	थ्	द्	ध्			
	प्	फ्	ब्	भ्			
संघर्षी :	ह	ख़्	ग़्	स्	ज़्	फ़्	व्
स्पर्श संघर्षी :	च्	छ्	ज्	झ्			
अनुनासिक :	ङ्	ञ्	ण्	न्	न्ह	म्	म्ह

पार्श्विक : ल् ल्ह

लुंठित : र् र्ह

उत्क्षिप्त : ड़ ढ़

अंतस्थ : य् व्

इसी वर्गीकरण को इस तालिका के माध्यम से अच्छी तरह समझा जा सकता है -

हिन्दी ध्वनियाँ -

प्रयत्न व्यंजन	द्वयोष्ठ्य	दंतोष्ठ्य	दंत्य	वर्त्स्य	तालव्य	मूर्धन्य	कंठ्य	जिह्वामूलीय	स्वरयंत्रमुखी
स्पर्श अल्पप्राण महाप्राण	प् ब् फ् भ्		त् द् थ् ध्			ट् ड् ठ् ढ्	क् ग् ख् घ्	क़्	
स्पर्श - संघर्षी अल्पप्राण महाप्राण					च् ज् छ् झ्				
अनुनासिक									

अल्पप्राण महाप्राण	म् म्ह			न् न्ह	ञ्		ङ्		
पार्श्विक अल्पप्राण महाप्राण				ल् ल्ह					
लुंठित अल्पप्राण महाप्राण				र् र्ह					
संघर्षी अर्धस्वर		फ़् व्		स् ज़्	श्			ख़् ग़्	ह् (:)
स्वर									
संवृत					इ ई		उ ऊ		
अर्धसंवृत					ए		ओ		
अर्धविवृत					ऐ	अ	ऑ औ		
विवृत							आ		

ध्वनि संरचना के अंतर्गत स्वर और व्यंजन के अतिरिक्त भाषा के कुछ एसे तत्व आते हैं जो भाषा को मूर्त रूप प्रदान करते हैं। भाषण, वाद-विवाद अथवा वार्तालाप में मनुष्यों

के मुख से एक क्रम से वाक्य अबाध गति से निकलते हैं। इन वाक्यों में कुछ तो सामान्य रूप से उच्चरित होते हैं, और कुछ में किन्हीं अक्षरों पर विशेष बल दिया जाता है। भाषा को मूर्त रूप देने वाले तत्वों को छंद शास्त्रीय विशेषताएँ (prosodic feature) माना जाता है। इनकी स्वतंत्र सत्ता नहीं होती, इन्हें अखंड्य स्वनिम भी कहा जाता है। ये पाँच होते हैं - मात्रा (दीर्घता), सुरलहर (अनुतान), बालाघात, संगम, अनुनासिकता।

क.मात्रा : इसे दीर्घता या व्यंजन विस्तार भी कहते हैं। जब हम दो व्यंजन बोलते हैं तो उनके बीच में आने वाला अंतराल या उन व्यंजनों को दीर्घता या लंबाई देने वाला तत्व ही 'मात्रा' कहलाता है। इसका स्वनिमिक महत्व भी है, अर्थात् दीर्घता के कारण अर्थ में भेद भी हो जाता है।

उदा॰ i. पता : रहने के स्थान का विवरण

पत्ता : पेड़ का पत्र

ii. पका : कच्चे का विलोम

पक्का : मज़बूत

ख.बालाघात : बालाघात उच्चारण की वह स्थिति है जब किसी एक स्वर या व्यंजन पर अधिक बल दिया जाता है, फेफड़ों से आने वाले वायु-प्रवाह की तीव्रता पर निर्भर करता है। बालाघात में ह्रस्व स्वर दीर्घ स्वर में और अल्पप्राण महाप्राण में हो जाते हैं। पूरे हिन्दी प्रदेश में बलाघात में एकरूपता नहीं है, कभी एक अक्षर पर बल है तो कभी दूसरे अक्षर पर।

बलाघात के भेद :

1.ध्वनि बलाघात : किसी ध्वनि (स्वर-व्यंजन) पर होने वाला बलाघात ध्वनि बलाघात कहलाता है। यदि किसी अक्षर में एक से अधिक ध्वनियाँ हों तो उनमें एक शीर्ष अवश्य होता है। यह शीर्ष प्रायः स्वर होता है। ध्वनि बलाघात सामान्यतः शीर्ष पर ही होता है।

उदा॰ : राम् में ध्वनि बलाघात पूर्व गह्वर 'र्' और पश्च गह्वर 'म्' पर न होकर शीर्ष 'आ' पर होगा।

2.अक्षर बलाघात : अक्षर बलाघात से तात्पर्य है, वह बलाघात जो अक्षर पर हो। एक शब्द में एक से अधिक अक्षर होने पर किसी एक अक्षर पर बलाघात सबसे अधिक होता है, किसी अन्य पर उससे कम और तीसरे, चौथे पर उससे भी कम। इन बलाघातों को क्रमशः प्रथम बलाघात, द्वितीय बलाघात, तृतीय बलाघात, चतुर्थ बलाघात आदि की संज्ञा दी जाती है।

उदा॰ : हिन्दी शब्द 'मुसलमान' में 'मान्' पर प्रथम बलाघात है, 'सल्' पर द्वितीय और 'मु' पर तृतीय बलाघात है।

3.पद बलाघात : इसे ही प्रायः शब्द बलाघात के नाम से माना जाता है। एक से अधिक पदों/शब्दों के वाक्य में सामान्यतः सभी पदों पर समान बलाघात रहता है, परंतु कभी-कभी वाक्य को विशिष्ट अर्थ देने के लिए वक्ता पद-विशेष पर अधिक बलाघात कर सकता है। यह पद संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, मुख्य क्रिया अथवा क्रियाविशेषण हो सकता है।

उदा॰ मैं आज अपने घर जाऊँगा। (मैं ही, कोई अन्य नहीं)

मैं आज अपने घर जाऊँगा। (आज ही, कल नहीं)

मैं आज अपने घर जाऊँगा। (अपने, किसी अन्य के नहीं)

मैं आज अपने घर जाऊँगा। (घर, दुकान या स्कूल नहीं)

मैं आज अपने घर जाऊँगा। (जाऊँगा ही, रुकूँगा नहीं)

4.वाक्यांश बलाघात : कभी-कभी वाक्य में किसी अंश (पदबंध आदि) पर अधिक बल दिया जाता है, इसे वाक्यांश बलाघात कहा जाता है। भावावेश में बोलते समय इसे देखा जा सकता है। इसके कारण भी पद बलाघात के समान ही अर्थ में परिवर्तन आ जाता है।

उदा॰ अंग्रेज़ी का एक वाक्य देखिए :

you just shut up and don't talk to me

इसमें अपनी इच्छानुसार वक्ता प्रथम द्वितीय वाक्यांश पर बलाघात कर सकता है और इसके कारण अर्थ में बलात्मक परिवर्तन भी आ जाता है। पहले वाक्यांश पर बलाघात में 'श्रोता के चुप रहने' और दूसरे पर बलाघात में 'उसके वक्ता से न बोलने' को अधिक महत्त्व मिलता है।

5.वाक्य बलाघात : सामान्यतः बातचीत के समय सभी वाक्यों पर एक समान बल देखा जाता है परंतु परिस्थिति विशेष आज्ञा, आश्चर्य, आवेश आदि के समय किसी वाक्य पर अधिक बलाघात भी संभव है और उससे भी अर्थ में बलात्मक परिवर्तन आता है।

उदा॰ : वाह ! चोरी और सीना जोरी। निकलो यहाँ से।

इसमें रेखांकित वाक्य पर बलाघात शेष अंश की तुलना में अधिक होगा।

ग॰सुरलहर : आवाज़ का उतार-चढ़ाव या आरोह-अवरोह 'अनुतान' कहलाता है। इसे 'सुरलहर' भी कहा जाता है। सामान्यतः दो प्रकार की ध्वनियाँ होती हैं :

i.सघोष ध्वनि : यहाँ स्वर-तंत्रियों में कंपन पैदा होता है। यह कंपन प्रति सेकंड आवृत्ति है। यही उस ध्वनि का सुर है। जब एक साथ घोष ध्वनियाँ बोली जाती है तो लगातार कई सुर मिलकर एक लहर-सी बनती है।

ii.अघोष ध्वनि : इन ध्वनियों के उच्चारण में भी थोड़ी बहुत लहर अवश्य होती है। यही लहर 'सुरलहर' कहलाती है और इसे ही अनुतान कहते हैं।

उदा॰ मैं जाऊँ = म् + ऐँ + ज् + आ + ऊँ

सामान्य रूप से अनुतान को पाँच या छः रूपों पर संकेतिक किया जाता है :

आरोह

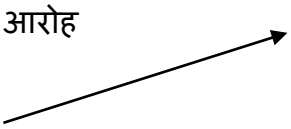

अवरोह

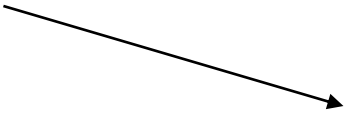

सम

विराम

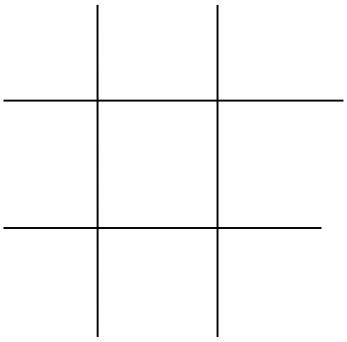

आरोहावरोह

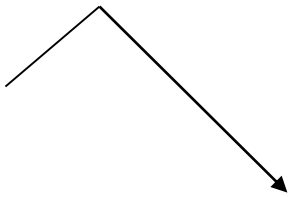

अवरोहरोह

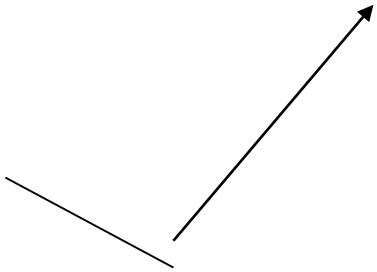

अनुतान की दृष्टि से हिन्दी में निम्न प्रकार के वाक्य है :

i.सामान्य वाक्य : पुस्तक अच्छी है।

2 3 1

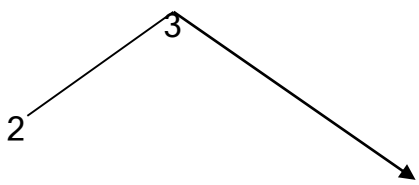

1

ii.प्रश्नवाचक वाक्य : पुस्तक कैसी है?

2 1 3

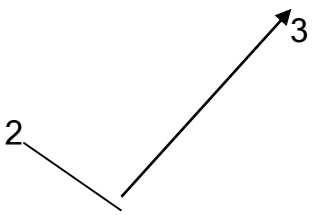

1

iii.आश्चर्यसूचक वाक्य : चोर भाग गया !

3 2 1

iv.आज्ञासूचक वाक्य : यहीं ठहरों।

3 1

v.निषेधसूचक वाक्य : मैं नहीं जाऊँगा।

1 3 2

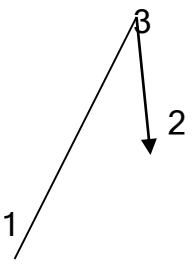

घ.संगम : ध्वनियों के उच्चारण के बीच के अवकाश, विराम को संगम कहते हैं। इसे संहिता या विवृति भी कहा जाता है। विद्वानों ने संहिता के कई भेद किए हैं :

i.ऊपरमुखी संहिता

ii.अधौमुखी संहिता

iii।सममुखी संहिता

इनमें कुछ संहिता स्वनिक (ध्वन्यात्मक) होती हैं और कुछ स्वनिमिक (अर्थ भेदक) होती हैं। इनका प्रयोग उच्चारण के माध्यम से होता है। जब संहिता स्वनिमिक होती है तो वह अर्थ में भेद उत्पन्न करती है और अर्थ को बदल देती है।

उदा॰ 1.1 तुम खूब हँस + आया करो

1.2 तुम खूब हँसाया करो

2.1 घास फिर से उग + आई है

2.2 घास फिर से उगाई है

ङ.अनुनासिकता : यह मूलतः न स्वर है, न व्यंजन। वस्तुतः जब स्वर नाक से बोला जाता है, तब उस स्वर को अनुनासिक कहते हैं। यही प्रक्रिया 'अनुनासिकता' कहलाती है। सामान्यतः शिरोरेखा के ऊपर मात्रा होने पर बिन्दु का प्रयोग करते हैं, अन्यथा चन्द्रबिन्दु का। आज हिन्दी में 'अनुनासिकता' (ँ) तथा 'अनुस्वार' (ं) दोनों एक दूसरे के स्थान पर आ सकते हैं।

उदा॰ : सींचना शब्द में (ई) में अनुनासिकता पैदा की है। ऐतिहासिक दृष्टि से अनुनासिकता के दो भिन्न रूप विकसित हुए हैं :

i.नासिक्य व्यंजन **>** अनुनासिकता

उदा॰ : दंत > दाँत

अंकन > आँकना

ii.स्वतः विकसित अनुनासिकता

उदा॰ : सर्प > साँप

श्वास > साँस

हिन्दी में अनुनासिकता की तीन स्थितियाँ हैं :

i.स्वनिक : यह निकट के नासिक्य के पूर्व आ जाती है और इसका आना भी नासिक्य व्यंजन के

प्रभाव स्वरूप है।

उदा॰ नाम , प्राण

यहाँ 'नाम' में 'म' के द्वारा 'अ' स्वर का नासिक्यकरण हुआ है और 'प्राण' में 'ण' के द्वारा 'अ' स्वर का नासिक्यकरण हुआ है।

ii.स्वनिमिक : इसमें अर्थभेदकता के स्तर पर अनुनासिकता होती है।

उदा॰ सास - साँस

चौक - चौंक

iii.व्याकरणिक : व्याकरणिक कारणों से भी हिन्दी में अनुनासिकता की स्थिति आती है।

उदा॰ लड़का + ओ = लड़कों

चिड़िया + ँ = चिड़ियाँ

2.शब्द संरचना : भाषा की लघुतम, स्वतंत्र और सार्थक इकाई को शब्द की संज्ञा दी जाती है। शब्द-संरचना का अध्ययन उपसर्ग, प्रत्यय, समास तथा पुनरुक्ति आदि रूपों में करते हैं।

उपसर्ग : उपसर्ग वह भाषिक इकाई है, जो शब्द के पूर्व में प्रयुक्त होती है, किन्तु इसका स्वतंत्र प्रयोग नहीं होता। ऐसी इकाई शब्द-संरचना का मुख्य आधार है। इसे मुख्यतः दो भागों में विभक्त कर सकते हैं :

i.अपनी भाषा के उपसर्ग; यथा - हिन्दी में अ, कु, स, सु आदि।

अ - धर्म > अधर्म

दुर् - दिन > दुर्दिन

स - जीव > सजीव

सु - गंध > सुगंध

ii.दूसरी भाषा के उपसर्ग; यथा -

बे - बेकाम (फ़ा॰ + हि॰)

बे - बेसिर (फ़ा॰ + हि॰)

प्रत्यय : प्रत्यय वह भाषिक इकाई है, जो स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त न होकर शब्द के अंत में प्रयुक्त होती है। प्रत्यय को भी मुख्यतः दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं :

i.निज भाषा प्रत्यय

कार = साहित्यकार, नाटककार, स्वर्णकार

आनी = जेठानी, सेठानी, देवरानी

ता = सफलता, असफलता, सुंदरता

ii.कभी-कभी शब्द के साथ भिन्न भाषा के उपसर्ग प्रयुक्त होते हैं; यथा -

ई = डॉक्टरी डॉक्टर (अंग्रेज़ी) + ई (हिन्दी प्रत्यय)

दारी = वफादारी वफा (अ॰) + दार (फ़ा॰)

दार = जड़दार जड़ (हि॰) + दार (फ़ा॰)

समास : समास में दो शब्द जुड़कर एक सामासिक शब्द का रूप धारण कर लेते हैं। ऐसे रूप को समस्त पद या सामासिक पद कहते हैं; यथा -

माता और पिता **>** माता-पिता

राजा का पुत्र **>** राजपुत्र

समास प्रक्रिया में दो शब्दों के मध्य से कारक चिह्न का लोप हो जाता है

घोड़ों की दौड़ **>** घुड़दौड़

अर्थ संदर्भ से सामासिक शब्दों को दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं -

i.यहाँ उन सामासिक शब्दों को रख सकते हैं, जिनके अर्थ वहीं रह जाते हैं, जो समास के पूर्व होते हैं; यथा -

माता और पिता **>** माता-पिता

राजा और रानी **>** राजा-रानी

ii.इस वर्ग में उन सामासिक शब्दों को रख सकते हैं; जिनके अर्थ में भिन्नता आ जाती है; यथा- जल और वायु **>** जलवायु

यहाँ विग्रह रूप में पानी और हवा का ज्ञान होता है, सामासिक रूप में विशेष अर्थ वातावरण का ज्ञान होता है।

शब्द-संरचना-परिवर्तन : भाषा में एक प्रकार के शब्दों को दूसरे प्रकार के शब्दों में बदलने के लिए नियमानुसार शब्द-संरचना बदलनी होती है; यथा - संज्ञा से विशेषण-परिवर्तन -

भूख > भूखा　　कृपा > कृपालु

समाज >सामाजिक　　शरीर > शारीरिक

शब्दों की व्याकरणिक संरचना बदलते हुए उससे संबंधित नियमों का ध्यान रखना पड़ता है; यथा- पुलिंग से स्त्रीलिंग परिवर्तन -

ई - नर > नारी　　पुत्र > पुत्री

आ - बाल > बाला　　सुत > सुता

3.पद संरचना : सार्थक ध्वनि-समूह शब्द कहलाता है तथा शब्द का वाक्य में प्रयोग पद कहलाता है। कोई भी शब्द जब तक पद नहीं बन जाता उसका प्रयोग नहीं हो सकता। पद बनाने के लिए शब्द में कुछ विशेष अर्थों के बोधक प्रत्यय लगाए जाते हैं। विभिन्न भाषाओं के वाक्यों में पदों का क्रम निश्चित होता है, उसी के अनुसार उसका अर्थ समझा जाता है। पद संरचना में पदों के विभिन्न व्याकरणिक रूपों का अध्ययन किया जाता है। उसी के अंतर्गत संबंध तत्व का भी अध्ययन किया जाता है। संबंध तत्व जिन भावों की अभिव्यक्ति करते हैं वे हैं लिंग, वचन, पुरुष, काल, वृत्ति, कारक आदि।

i.लिंग : लिंग अर्थात् - स्त्री या पुरुष के जाति बोधक चिह्न। हिन्दी में दो लिंग हैं - स्त्रीलिंग और पुलिंग। भाषा के अंतर्गत लिंग एक व्याकरणिक कोटि है - जिसका निर्णय शब्द के अर्थ एवं रूप के आधार पर किया जाता है। हिन्दी में लिंग का प्रभाव संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रिया - सभी विकारी शब्द भेदों पर पड़ता है -

क.संज्ञा : तद्भव संज्ञा शब्द पुलिंग में अकारांत तथा स्त्रीलिंग में ईकारांत होते हैं जैसे पुलिंग सोना, थैला, चमड़ा आदि; स्त्रीलिंग लकड़ी, धोती, खूँटी आदि। पुलिंग शब्दों को

स्त्रीलिंग बनाने के लिए 'ई' प्रत्यय का ही प्रयोग होता है जैसे बूढ़ा-बूढ़ी, चाचा-चाची, ताया-ताई, मुर्गा-मुर्गी।

ख.सर्वनाम : जो शब्द संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त होता है वह सर्वनाम कहलाता है। जैसे मैं - मैं का प्रयोग पुरुष और स्त्री दोनों ही अपने लिए करते हैं।

ग.विशेषण : हिन्दी में दो प्रकार के विशेषण हैं - आकारांत और आकारांतेतर। आकारांत विशेषण लिंग के अनुसार बदलते हैं जैसे अच्छा लड़का, अच्छी लड़की, छोटा स्कूल, छोटी पाठशाला। आकारांतेतर विशेषण दोनों लिंगों में समान होते हैं जैसे सुंदर घर - सुंदर बगिया

मूर्ख नौकर - मूर्ख नौकरानी

घ.क्रिया : क्रिया वह शब्द अथवा शब्दों का समूह है जिससे किसी कर्म या घटना अथवा अस्तित्व का बोध होता है। काव्य के अंतर्गत क्रिया प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में अवश्य उपस्थित रहती है। क्रिया के मूल रूप को धातु कहते हैं। हिन्दी में क्रिया के रूप पुलिंग में आकारांत और ईकारांत होते हैं जैसे सोता है, सोती है, आता है, आती है, रोएगा, रोएगी, खा रहा है, खा रही है आदि।

ii.वचन : वचन का संबंध संख्या से है। संसार की अधिसंख्य भाषाओं में दो वचन होते हैं - एकवचन और बहुवचन। वचन का प्रभाव संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रिया सभी व्याकरणिक कोटियों पर पड़ता है। लोग, सब, जैसे कुछ नित्य बहुवचन बोधक शब्दों को छोड़कर हिन्दी की समस्त संज्ञा एकवचन होती है। हिन्दी संज्ञा को बहुवचन बनाने के लिए उनमें प्रत्यय जोड़ना पड़ता है।

iii.कारक : व्याकरणिक कोटियों में कारक का स्थान सबसे महत्त्वपूर्ण है। कृ + अक से कारक शब्द की व्युत्पत्ति हुई है - अर्थात् करने वाला संज्ञा या सर्वनाम के जिस रूप से उसका संबंध वाक्य के किसी दूसरे शब्द के साथ प्रकाशित होता है उस रूप को कारक कहते हैं। हिन्दी में कर्ता में 'ने', कर्म में 'को', करण में 'से', संप्रदान में 'के लिए', अपादान में 'से', संबंध में 'का' और अधिकरण में 'में' या 'पर' पर्सर्गों का प्रयोग होता है। इनमें से कर्ता और कर्म में अधिकतर शून्य संबंध तत्व का प्रयोग देखा जाता है। ज़्यादातर कर्ता में 'ने' केवल भूतकाल में और वह भी सकर्मक क्रियाओं के संयोग में लगता है। सर्वनाम शब्दों में मेरा-हमारा, तेरा-तुम्हारा को छोड़कर सब कारकों में उपर्युक्त परसर्गों का प्रयोग होता है। अंग्रेज़ी में कारक की जगह पूर्वसर्गों (to, with, form, at) आदि का प्रयोग होता है।

iv.पुरुष : पुरुष का संबंध सर्वनाम शब्दों के साथ होता है जिसके अनुसार उत्तम पुरुष (मैं पढ़ता हूँ), मध्यम पुरुष (तुम सुनते हो), अन्य पुरुष (वह गाता है) का प्रयोग होता है। हिन्दी में क्रिया के रूप कृदंतों से विकसित होने के कारण उनपर पुरुष का प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं पड़ता जैसे - मैं वहाँ सोया, तू वहाँ गया, वह वहाँ मरा। लेकिन जिन रूपों में होना क्रिया है (है, हैं, हो, हूँ) वहाँ उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष और अन्य पुरुष के रूप भिन्न-भिन्न होते हैं। संस्कृत, हिन्दी तथा अंग्रेज़ी तीनों भाषाओं में पुरुष के आधार पर क्रिया रूपों में अंतर होता है।

v.काल : वाक्यार्थ में क्रिया के जिस रूप से क्रिया व्यापार के समय का बोध होता है, उसे काल कहते हैं। काल के तीन भेद हैं - वर्तमान, भूत और भविष्यत। काल विभाजन का आधार है - कार्य की निष्पत्ति के होने का समय।

4.वाक्य संरचना : भाषा की स्वतंत्र, पूर्ण सार्थक इकाई को वाक्य कहते हैं। वाक्य में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कम-से-कम एक क्रिया का होना अनिवार्य है। वाक्य संरचना में मुख्यतः उद्देश्य तथा विधेय दो भाग होते हैं; यथा -

'मोहन जा रहा है' में 'मोहन' उद्देश्य और 'जा रहा है' विधेय है।

वाक्य में उद्देश्य छिपा भी हो सकता है; यथा -

जाओ **>** (तुम) जाओ।

खाइए **>** (आप) खाइए।

वाक्य की स्पष्ट संरचना का भावाभिव्यक्ति में विशेष महत्त्व होता है;

यथा - रोको मत <u>जाने दो</u>। - <u>रोको</u> मत जाने दो।

यहाँ प्रथम वाक्य-संरचना में 'जाने देने' की भावाभिव्यक्ति है, तो दूसरी वाक्य संरचना में रोकने की वाक्य को रचना आधार पर सरल, संयुक्त और मिश्र वर्गों में विभक्त कर सकते हैं।

अर्थ की दृष्टि से वाक्य के निम्नलिखित भेद किए जा सकते हैं - विधानसूचक वाक्य, नकारात्मक वाक्य, प्रश्नवाचक वाक्य, आज्ञासूचक वाक्य, इच्छासूचक वाक्य, संदेहसूचक वाक्य, संकेतसूचक वाक्य और विस्मयसूचक वाक्य। इस प्रकार के वाक्य को दूसरे प्रकार के वाक्य में परिवर्तित कर सकते हैं; यथा - नकारात्मक वाक्य निर्माण प्रक्रिया -

वह योग्य है। **>** वह अयोग्य नहीं है।

तुम यहाँ से जाओ। **>** तुम यहाँ न रुको।

5.प्रोक्ति संरचना : भाषा की महत्तम इकाई प्रोक्ति है। ध्वनि यदि भाषा की लघुतम इकाई है, तो प्रोक्ति महत्तम और पूर्ण अभिव्यक्ति करने वाली इकाई है। वाक्य के द्वारा प्रोक्ति के समकक्ष अभिव्यक्ति संभव नहीं है; यथा -

क.गौरव अच्छा लड़का है।

ख.गौरव एम॰ ए॰ का छात्र है।

ग.गौरव नियमित परिश्रम करता है।

घ.गौरव को परीक्षा में प्रथम स्थान मिला।

यहाँ गौरव के विषय में चार वाक्य दिए गए हैं। आपसी सम्बन्धों के अभाव में यहाँ पूर्ण स्पष्ट और सहज अभिव्यक्ति नहीं है। प्रोक्ति का रूप आते ही भावाभिव्यक्ति पूर्ण स्पष्ट हो जाती है -

“गौरव अच्छा लड़का है। नियमित परिश्रम करने के कारण उसे एम॰ ए॰ की परीक्षा में प्रथम स्थान मिला।”

यह एक लघु प्रोक्ति है। प्रोक्ति का स्वरूप तो उपन्यास या महाकाव्य के प्रथम शब्द से अंतिम शब्द तक विस्तृत हो सकता है। आचार्य विश्वनाथ ने ‘साहित्य दर्पण’ में महाकाव्य की कल्पना की है। उन्होंने लिखा है - “वाकयोच्चयो महाकाव्यम।” [31] वाक्यों का उच्चय (उत् + चय) एक दूसरे के ऊपर सटा रूप महावाक्य है। इस प्रकार विभिन्न वाक्यों के एक-दूसरे के साथ समाहित होने के स्वरूप को महावाक्य कहते हैं। आचार्य विश्वनाथ ने इसे ‘महावाक्य’ कहा, तो डॉ॰ रामचन्द्र वर्मा ने इसे ‘वाक्यबंध’ नाम से अभिहित किया है। उनकी धारणा है कि यदि पद से विभिन्न पदों के योग पर पदबंध बनाता है तो वाक्य को विभिन्न वाक्यों के योग से वाक्यबंध बनाना चाहिए।

6.अर्थ संरचना : ध्वनि, शब्द, पद और वाक्य आदि भाषा की शारीरिक इकाइयाँ हैं, तो अर्थ भाषा की आत्मा हैं। अर्थ को मुख्यतः निम्नलिखित वर्गों में विभक्त कर सकते हैं :

i.मुख्यार्थ : पानी, गाय, विद्यालय आदि।

ii.लक्ष्यार्थ : वह तो गधा है।

iii.व्यंजनार्थ : यहाँ परंपरा से अर्थ जोड़ते हैं, यथा - गंगाजल (पवित्रता का प्रतीक)

iv.सामाजिक : 'you' शब्द के लिए हिन्दी में विभिन्न संदर्भों के लिए तू, तुम और आप का प्रयोग करते हैं।

तू - (छोटे के लिए, गुस्से में) तू जा, तू खा।

तुम - (बराबर के लिए) तुम चलो, तुम लिखो।

आप - (आदरसूचक, बड़ों के लिए) आप चलिए, आप लिखिए।

v.बलात्मक : प्रमोद रोटी खाएगा। > रोटी खाएगा प्रमोद।

vi.शैलीय अर्थ : हिन्दुस्तानी, उर्दू, हिन्दी शैली।

आप बैठिए, आप तशरीफ रखिए, आप विराजिए।

vii.पर्यायता : कुछ शब्दों को पर्यायी या समानार्थी शब्द कहते हैं।

वास्तव में पर्यायी शब्दों के वर्ग हैं :

क.पूर्ण पर्यायी : Dog > कुत्ता, कुक्कुर

Man > आदमी, मनुष्य

ख.आंशिक पर्याय : भीगा - गीला, छोटा - नाटा, सुंदर - अच्छा, बढ़िया - स्वादिष्ट

viii.विलोम : विलोम अर्थ अभिव्यक्ति हेतु मूल यौगिक रूपों में शब्दों का निर्माण किया जाता है।

ix.मूल : जड़ - चेतन, सुख - दुख, दिन -रात आदि

x.यौगिक : इसमें कभी उपसर्ग लगते हैं, कभी प्रत्यय।

यथा - शुभ - अशुभ, उचित - अनुचित (उपसर्ग - आधार)

कृतज्ञ -कृतघ्न (प्रत्यय - आधार)

अर्थ संरचना में समास की भी विशेष भूमिका होती है;

यथा - दुआ - बद्दुआ , स्वदेश - परदेश (विदेश)

स्वतंत्र - परतंत्र, बुद्धिमान - बुद्धिहीन

इसी प्रकार अनेकार्थी शब्दों की संरचना में भी विविधता देखी जा सकती है, जो भाषा-संरचना का महत्त्वपूर्ण अंश है।

1.6 हिन्दी भाषा : उत्पत्ति और विकास :

भारत में प्रमुख रूप से आर्य परिवार एवं द्रविड़ परिवार की भाषाएँ बोली जाती हैं। उत्तर भारत की भाषाएँ आर्य परिवार की तथा दक्षिण भारत की भाषाएँ द्रविड़ परिवार की हैं। उत्तर भारत की आर्य भाषाओं में संस्कृत सबसे प्राचीन है, जिसका प्राचीनतम रूप ऋग्वेद में मिलता है, इसी की उत्तराधिकारिणी हिन्दी है।

1.6.1 हिन्दी भाषा की उत्पत्ति :

भारतीय आर्यभाषाओं के काल को मोटे तौर पर तीन कालखण्डों में विभक्त किया गया है :

1.प्राचीन भारतीय आर्यभाषा काल (1500 ई॰ पू॰ से 500 ई॰ पू॰ तक)

2.मध्य भारतीय आर्यभाषा काल (500 ई॰ पू॰ से 1000 ई॰ तक)

3.आधुनिक भारतीय आर्यभाषा काल (1000 ई॰ से अब तक)

प्राचीन भारतीय आर्यभाषा काल :

इस काल में वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत दो भाषाएँ थीं। चारों वेद, ब्राह्मण ग्रंथ, उपनिषद् इसी काल की रचना हैं, इनमें भाषा का एक रूप नहीं है। ऋग्वेद संस्कृत का प्राचीनतम ग्रंथ है। लौकिक संस्कृत में रामायण, महाभारत आदि लिखे गए। इस काल की भाषा योगात्मक थी, शब्दों में धातु रूप सुरक्षित थे, भाषा में संगीतात्मकता थी, पदों का स्थान निश्चित नहीं था। शब्द भंडार में तत्सम शब्दों को प्रचुरता थी।

मध्य भारतीय आर्यभाषा काल :

इस काल में तीन भाषाएँ विकसित हुईं :

1.पालि भाषा (500 ई॰ पू॰ से 1 ई॰ तक)

2.प्राकृत भाषा (1 ई॰ से 500 ई॰ तक)

3.अपभ्रंश भाषा (500 ई॰ से 1000 ई॰ तक)

पालि को मागधी भाषा भी कहा जाता है। यह बौद्ध धर्म की भाषा है। बौद्ध साहित्य पालि भाषा में लिखा गया है। त्रिपिटक पालि में लिखे गए हैं।

प्राकृत भाषा बोलचाल की भाषा होने के कारण पण्डितों में प्रचलित नहीं थी। संस्कृत नाटकों के अधम पात्र इस बोली का प्रयोग करते थे। जैन साहित्य प्राकृत भाषा में लिखा गया है। प्राकृत भाषा के पाँच प्रमुख भेद थे :

1.शौरसेनी प्राकृत : यह मथुरा या शूरसेन जनपद में बोली जाती है।

2.पैशाची प्राकृत : यह उत्तर-पश्चिम में कश्मीर के आसपास की भाषा थी।

3.महाराष्ट्री प्राकृत : इसका मूल स्थान महाराष्ट्र था।

4.अर्द्धमागधी प्राकृत : यह मागधी और शौरसेनी के बीच के क्षेत्र की भाषा थी।

5.मागधी प्राकृत : यह मगध के आसपास प्रचलित भाषा थी।

अपभ्रंश भाषा का प्रयोग 500 ई॰ से 1000 ई॰ तक हुआ। इस भाषा को अवहठ, अवहट्ठ, अवहत्थ, देशभाषा, देशीभाषा आदि अनेक नामों से पुकारा गया। अपभ्रंश का शाब्दिक अर्थ है- बिगड़ा हुआ या गिरा हुआ। जब भाषा का रूप सुसंस्कृत न रहकर बोलचाल का सामान्य रूप हो जाता है तो पण्डितों की दृष्टि में वह भाषा बिगड़ी हुई मानी जाती है और तब वे उसे अपभ्रंश की संज्ञा देते हैं।

अपभ्रंश भाषा का प्रयोग कालिदास के नाटक 'विक्रमोर्वशीय' में निम्न वर्ग के पात्रों द्वारा किया गया है। छठी शताब्दी के अलंकारवादी आचार्य 'भामह' ने भी अपभ्रंश का उल्लेख संस्कृत एवं प्राकृत के साथ करते हुए इसे काव्योपयोगी भाषा बताया है। अपभ्रंश का साहित्य में प्रयोग 1200 ई॰ तक हुआ, यद्यपि इसका काल 500 ई॰ से 1000 ई॰ तक ही माना जाता है। 1000 ई॰ के आसपास हिन्दी का प्रयोग साहित्य में प्रारम्भ हो चुका था, किन्तु कुछ काल तक बाद में भी अपभ्रंश का प्रयोग साहित्य में होता रहा।

आधुनिक भारतीय आर्यभाषा काल :

आधुनिक आर्य भाषाओं का विकास इसी अपभ्रंश भाषा से हुआ है। हिन्दी का विकास भी अपभ्रंश से ही हुआ है। अतः हिन्दी की जननी अपभ्रंश है। उत्तर भारत में अपभ्रंश के सात क्षेत्रीय रूपान्तरण प्रचलित थे, जिनसे आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का कालान्तर में विकास हुआ। इनका विवरण निम्नवत् है :

अपभ्रंश का क्षेत्रीय रूप	विकसित होने वाली आर्य भाषाएँ
1.शौरसेनी अपभ्रंश	पश्चिमी हिन्दी,राजस्थानी, गुजरती
2.पैशाची अपभ्रंश	पंजाबी, लहंदा
3.ब्राचड़ अपभ्रंश	सिन्धी
4.खस अपभ्रंश	पहाड़ी
5.महाराष्ट्री अपभ्रंश	मराठी
6.अर्द्धमागधी अपभ्रंश	पूर्वी हिन्दी
7.मागधी अपभ्रंश	बिहारी, उड़िया, बंगला,असमिया

हिन्दी एवं अन्य भारतीय आर्य भाषाओं का विकास अपभ्रंश के क्षेत्रीय भेदों से हुआ। इस विवेचन के आधार पर भाषाओं के क्रमिक विकास को निम्न रूप में समझा जा सकता है :

वैदिक संस्कृत > संस्कृत > पालि >प्राकृत >अपभ्रंश > हिन्दी एवं अन्य आधुनिक आर्य भाषाएँ

अतः हिन्दी भाषा की उत्पत्ति मूलतः शौरसेनी अपभ्रंश से हुई है।

1.6.2 हिन्दी भाषा का विकास :

हिन्दी भाषा के विकास को तीन कालों में बाँटा जा सकता है - आदिकाल, मध्यकाल, आधुनिक काल। यहाँ इन तीनों पर संक्षेप में विचार किया जा रहा है।

आदिकाल (1000 ई॰ से 1350 ई॰) :

हिन्दी भाषा अपने आदिकाल में सभी बातों में अपभ्रंश के बहुत अधिक निकट थी। आदिकालीन हिन्दी की मुख्य विशेषताएँ नीचे दी जा रही हैं :

ध्वनि -

आदिकालीन हिन्दी में मुख्यतः उन्हीं ध्वनियों (स्वर-व्यंजन) का प्रयोग मिलता है, जो अपभ्रंश में प्रयुक्त होती थीं। मुख्य अंतर निम्नलिखित हैं :

1.अपभ्रंश में केवल आठ स्वर थे - अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ओ। ये आठों ही स्वर मूल थे। आदिकालीन हिन्दी में दो नए स्वर ऐ, औ विकसित हो गए, जो संयुक्त स्वर थे तथा जिनका उच्चारण क्रमशः अए, अओ जैसा था।

2.च, छ, ज, झ संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश में स्पर्श व्यंजन थे, किन्तु आदिकालीन हिन्दी में ये स्पर्श-संघर्षी हो गए और तब से अब तक स्पर्श-संघर्षी ही हैं।

3.न, र, ल, स संस्कृत, पालि, अपभ्रंश में दंत्य ध्वनियाँ थीं। आदिकाल में ये वर्त्स्य हो गईं।

4.अपभ्रंश में ड़, ढ़ व्यंजन नहीं थे। आदिकाल की हिन्दी में इनका विकास हुआ।

5.न्ह, म्ह, ल्ह पहले संयुक्त व्यंजन थे, अब वे क्रमशः न, म, ल के महाप्राण रूप हो गए, अर्थात् संयुक्त व्यंजन न रहकर मूल व्यंजन हो गए।

व्याकरण -

आदिकालीन हिन्दी का व्याकरण 1000 ई॰ के आसपास अपभ्रंश के बहुत निकट था। भाषा में काफ़ी रूप ऐसे थे जो अपभ्रंश के थे, किन्तु धीरे-धीरे अपभ्रंश के व्याकरण रूप कम होते गए और हिन्दी के अपने रूप विकसित हो गए, तथा धीरे-धीरे हिन्दी अपने पैरों पर खड़ी हो गई और अपभ्रंश के रूप प्रायः प्रयोग से निकाल गए। आदिकालीन हिन्दी का व्याकरण समवेततः अपभ्रंश व्याकरण से इन बातों में भिन्न है :

1.अपभ्रंश संस्कृत, पालि, प्राकृत आदि की तुलना में वियोगात्मक होते हुए भी एक सीमा तक संयोगात्मक भाषा थी। काफ़ी क्रिया रूप तथा कारकीय रूप होते थे, किन्तु आदिकालीन हिन्दी में वियोगात्मक रूपों का प्राधान्य हो चला। सहायक क्रियाओं तथा परसर्गों का प्रयोग काफ़ी होने लगा ओर धीरे-धीरे संयोगात्मक रूप कम होते गए और उनका स्थान वियोगात्मक रूप लेते गए।

2.नपुंसकलिंग एक सीमा तक अपभ्रंश में था, यद्यपि संस्कृत, पालि, प्राकृत की तुलना में उसकी स्थिति अस्पष्ट-सी होती जा रही थी। आदिकालीन हिन्दी में नपुंसकलिंग का प्रयोग प्रायः पूर्णतः समाप्त हो गया।

3.हिन्दी वाक्य रचना में शब्द-क्रम धीरे-धीरे निश्चित होने लगा था। अपभ्रंश में शब्द-क्रम बहुत निश्चित नहीं था।

शब्द-भंडार -

आदिकालीन हिन्दी का शब्द-भंडार अपने प्रारम्भिक चरण में अपभ्रंश का ही था, किन्तु धीरे-धीरे कुछ परिवर्तन आते गए, जिनमें उल्लेख दो-तीन हैं :

1.भक्ति-आंदोलन का प्रारम्भ हो गया था, अतः तत्सम शब्दावली, आदिकालीन हिन्दी में अपभ्रंश की तुलना में कुछ बढ़ने लगी थी।

2.मुसलमानों के आगमन से कुछ पश्तो, फ़ारसी-अरबी, तुर्की शब्द हिन्दी में आए।

3.भक्ति-आंदोलन तथा मुसलमानी शासन का प्रभाव समाज पर भी पड़ा जिसके परिणामस्वरूप कुछ ऐसे पुराने शब्द जो अपभ्रंश में प्रचलित थे, इस काल में अनावश्यक होने के कारण या तो हिन्दी शब्द-भंडार से निकाल गए या फिर उनका प्रयोग बहुत कम हो गया।

साहित्य में प्रयोग -

इस काल में साहित्य में प्रमुखतः डिंगल, मैथिली, दक्खिनी, अवधी, ब्रज तथा मिश्रित भाषा का प्रयोग मिलता है। इस काल के प्रमुख हिन्दी साहित्यकार गोरखनाथ, विद्यापति, नरपति नाल्ह, चंदबरदाई, कबीर आदि हैं।

मध्यकाल (1350 ई॰ से 1850 ई॰) :

ध्वनि -

इस काल में आकर ध्वनि, व्याकरण तथा शब्द-भंडार के क्षेत्र में मुख्यतः कुछ परिवर्तन हुए। ध्वनि के क्षेत्र में दो-तीन बातें उल्लेखनीय हैं :

1.फ़ारसी की शिक्षा की कुछ व्यवस्था तथा दरबार में फ़ारसी भाषा का प्रयोग होने से उच्च वर्ग में तथा नौकरी-पेशा लोगों में फ़ारसी का प्रचार हुआ, जिसके कारण उच्च वर्ग के लोगों की हिन्दी में तुर्की-अरबी-फ़ारसी के काफ़ी शब्द प्रचलित हो गए और क़, ख़, ग़, ज़, फ़ ये पाँच नए व्यंजन हिन्दी में आ गए।

2.शब्दांत का 'अ' कम-से-कम मूल व्यंजन के बाद होने पर लुप्त हो गया अर्थात् 'राम' का उच्चारण 'राम्' होने लगा। किन्तु 'भक्त' जैसे शब्दों में जहाँ 'अ' के पूर्व संयुक्त व्यंजन था, 'अ' बना रहा। कुछ स्थितियों में अक्षरांत 'अ' का भी लोप होने लगा। उदाहरण के लिए आदिकालीन 'जपता' अब उच्चारण में 'जप्ता' हो गया।

3.'ह' के पहले का 'अ' कुछ परिस्थितियों में 'ए' जैसा उच्चरित होने लगा था।

बहन, गहना, कहना

व्याकरण -

व्याकरण के क्षेत्र में भी मुख्यतः तीन ही बातें उल्लेख हैं :

1.इस काल में हिन्दी भाषा व्याकरण के क्षेत्र में पूरी तरह अपने पैरों पर खड़ी हो गई। अपभ्रंश के रूप हिन्दी से प्रायः निकल आए और जो कुछ बचे थे, वे जिन्हें हिन्दी ने आत्मसात् कर लिया था।

2.भाषा आदिकालीन भाषा की तुलना में और भी वियोगात्मक हो गई। संयोगात्मक रूप और भी कम हो गए।

3.उच्च वर्ग में फ़ारसी का प्रचार होने के कारण हिन्दी वाक्य-रचना फ़ारसी वाक्य-रचना से प्रभावित होने लगी थी।

शब्द-भंडार -

शब्द-भंडार की दृष्टि से ये बातें मुख्य हैं :

1.इस काल में आते-आते काफ़ी शब्द फ़ारसी (लगभग 3500), अरबी (लगभग 2500) तथा पश्तो (लगभग 125) से हिन्दी में आ गए और इन आगत विदेशी शब्दों की संख्या लगभग 5000 से ऊपर हो गई। फ़ारसी के कुछ मुहावरें और लोकोक्तियाँ भी आईं।

2.भक्ति आंदोलन के चरम बिन्दु पर पहुँचने के कारण तत्सम शब्दों का अनुपात भाषा में और भी बढ़ गया।

3.यूरोप से संपर्क होने के कारण कुछ पुर्तगाली, स्पेनी, फ्रांसीसी तथा अंग्रेज़ी शब्द भी हिन्दी में आ गए।

साहित्य में प्रयोग -

इस काल में धर्म की प्रधानता के कारण राम-स्थान की भाषा अवधी तथा कृष्ण-स्थान की भाषा ब्रज में ही विशेष रूप से साहित्य रचा गया। यों दक्खिनी, उर्दू, डिंगल, मैथिली और खड़ीबोली में भी साहित्य-रचना हुई। इस काल के प्रमुख साहित्यकार जायसी, सूर, मीरा, तुलसी, केशव, बिहारी, भूषण, देव आदि हैं।

आधुनिक काल (1850 ई॰ से अब तक) :

ध्वनि -

आधुनिककालीन हिन्दी में ध्वनि के क्षेत्र में चार-पाँच बातें उल्लेख्य हैं :

1.आधुनिक काल में शिक्षा के व्यवस्थित प्रचार के कारण तथा प्रारम्भ में हिन्दी प्रदेश के अनेक क्षेत्रों में कचहरियों की भाषा उर्दू होने के कारण क़, ख़, ग़, ज़, फ़ जो मध्यकाल में केवल उच्च वर्ग के या फ़ारसी पढ़े-लिखे लोगों तक प्रचलित थे, इस काल में प्रायः 1947 तक लोगों में खूब प्रचलित हो गए, किन्तु स्वतन्त्रता के बाद स्थिति बदली और अंग्रेज़ी में प्रयुक्त होने के कारण ज़, फ़ तो एक सीमा तक अब भी प्रयोग में है, किन्तु क़, ख़, ग़ के शुद्ध प्रयोग में कमी आई है। नई पीढ़ी इनके स्थान पर प्रायः क, ख, ग बोलने लगी है। हाँ हिन्दी की उर्दू शैली में इन पाँचों का ठीक उच्चारण होता है।

2.अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रचार के कारण कुछ बहुशिक्षित लोगों में 'ऑ' ध्वनि (कॉलिज, डॉक्टर, ऑफिस, कॉफी आदि) हिन्दी में प्रयुक्त हो रही है।

3.अंग्रेज़ी शब्दों के प्रचार के कारण कुछ नए संयुक्त व्यंजन (जैसे 'ड्र') हिन्दी में प्रयुक्त होने लगे।

4.स्वरों में ऐ, औ हिन्दी में आदिकाल में आए थे। उस समय इनका उच्चारण अए, अओ जैसा था, अर्थात् ये संयुक्त स्वर थे। आधुनिक काल में मुख्यतः 1940 के बाद ऐ और औ की स्थिति कुछ भिन्न हो गई है। इस संबंध में तीन बातें उल्लेख्य हैं :

* पश्चिमी हिन्दी क्षेत्र में ये स्वर समान्यतः मूल स्वर के रूप में उच्चरित होते है।

* पूर्वी हिन्दी क्षेत्र में अब भी ये अए, अओ रूप में संयुक्त स्वर के रूप में ही प्रयुक्त हो रहे हैं।

* नैया, कौआ जैसे शब्दों में पश्चिमी तथा पूर्वी दोनों ही हिन्दी क्षेत्र में ऐ, औ का उच्चारण क्रमशः संयुक्त स्वर अइ, अउ रूप में अर्थात् संस्कृत उच्चारण के समान होता है।

5. मध्यकाल में अ का लोप शब्दांत में तथा कुछ स्थितियों में अक्षरांत में होना आरम्भ हुआ था। आधुनिक काल तक आते-आते यह प्रक्रिया पूरी हो गई है। अब हिन्दी में उच्चारण में कोई भी शब्द अकारांत नहीं है।

व्याकरण -

व्याकरण की दृष्टि से अधोलिखित बातें कही जा सकती हैं :

1. आदिकाल में हिन्दी की विभिन्न बोलियों के व्याकरणिक अस्तित्व का प्रारम्भ हो गया था, किन्तु काफ़ी व्याकरणिक रूप ऐसे थे, जो आसपास के क्षेत्रों में समान थे। मध्यकाल में उनमें इस प्रकार के मिश्रण में काफ़ी कमी हो गई थी। सूर, बिहारी, देव आदि की ब्रजभाषा तथा जायसी, तुलसी आदि की अवधी इस बात का प्रमाण है। आधुनिक काल तक आते-आते ब्रज, अवधी, भोजपुरी, मैथिली आदि कई बोलियों का व्याकरणिक अस्तित्व इतना स्वतंत्र हो गया है कि उन्हें बड़ी सरलता से भाषा कि संज्ञा दी जा सकती है।

2. हिन्दी प्रायः पूर्णतः एक वियोगात्मक भाषा हो गई है।

3. प्रेस, रेडियो, शिक्षा तथा व्याकरणिक विश्लेषण आदि के प्रभाव से हिन्दी व्याकरण के रूप में काफ़ी स्थिर हो गई है तथा कुछ अपवादों को छोड़कर हिन्दी का स्वरूप सुनिश्चित हो चुका है।

4. कहा जा चुका है कि मध्यकाल में हिन्दी वाक्य-रचना एक सीमा तक फ़ारसी से प्रभावित हुई थी। आधुनिक काल में अंग्रेज़ी शिक्षा का प्रचार फ़ारसी की तुलना में कहीं अधिक हुआ। साथ ही समाचार-पत्रों, रेडियो तथा सरकारी कामों में प्रयोग के कारण भी अंग्रेज़ी हमारे अधिक निकट आई। इन सबका परिणाम यह हुआ है कि - हिन्दी भाषा वाक्य-रचना, मुहावरें तथा लोकोक्तियों के क्षेत्र में अंग्रेज़ी से बहुत अधिक प्रभावित हुई है।

5. इधर कुछ वर्षों से 'कीजिए' के लिए 'करिए', 'मुझे' के लिए 'मेरे को', 'मुझ से' के लिए 'मेरे से', 'तुझ में' के लिए 'तेरे में', 'नहीं जाता है' के स्थान पर 'नहीं जाता', 'नहीं जा रहा है' के स्थान पर 'नहीं जा रहा' जैसे नए रूपों तथा नई वाक्य-रचना का प्रयोग बढ़ता जा रहा है, अर्थात् भाषा रूप-रचना तथा वाक्य-रचना दोनों ही क्षेत्रों में परिवर्तित हो रही है।

शब्द भंडार -

शब्द-भंडार की दृष्टि से 1800 से अब तक के आधुनिक काल को मोटे रूप से छः - सात उपकालों में विभाजित किया जा सकता है। 1800 से 1850 तक का हिन्दी शब्द-भंडार मौटे रूप से वही था जो मध्यकाल के अंतिम चरण में था। अंतर केवल यह था कि - धीरे-धीरे अंग्रेज़ी के अधिकाधिक शब्द हिन्दी भाषा में आते जा रहे थे। 1850 से 1900 तक अंग्रेज़ी के और शब्दों के आने अतिरिक्त आर्य समाज के प्रचार-प्रसार के कारण तत्सम शब्दों का प्रयोग बढ़ा और कुछ पुराने तद्भव शब्द परिनिष्ठित हिन्दी से निकल गए। 1900 के बाद द्विवेदी काल तथा छायावादी काल में अनेक कारणों से तत्सम शब्दों का प्रयोग बढ़ना आरम्भ हो गया। प्रसाद, पंत, महादेवी वर्मा का पूरा साहित्य इस दृष्टि से दर्शनीय है। इसके बाद प्रगतिशील आंदोलन के कारण तद्भव शब्दों के प्रयोग में पुनः

वृद्धि हुई तथा शब्दों के प्रयोग में कुछ कमी आई। 1947 तक लगभग यही स्थिति रही। 1947 के बाद शब्द-भंडार में कई बातें उल्लेख्य हैं :

1.अनेक पुराने शब्द नए अर्थों में प्रचलित हो गए हैं। उदाहरण के लिए 'सदन' शब्द राज्यसभा तथा लोकसभा के लिए प्रयुक्त हो रहा है।

2.अभिव्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनेक नए शब्द (जैसे फ़िल्माना, घुसपैठिया) आ गए हैं।

3.साहित्य में नाटक, उपन्यास, कहानी, कविता की भाषा प्रायः बोलचाल के बहुत निकट आ गई है; उसमें अरबी, फ़ारसी तथा अंग्रेज़ी के जन-प्रचलित शब्दों का काफ़ी प्रयोग हो रहा है, किन्तु आलोचना की भाषा अब भी एक सीमा तक तत्सम शब्दों से काफ़ी लदी हुई है।

4.इधर हिन्दी को पारिभाषिक शब्दों की बहुत आवश्यकता पड़ी है क्योंकि हिन्दी अब विज्ञान, वाणिज्य, विधि आदि की भी भाषा है। इसकी पूर्ति के लिए अनेक शब्द अंग्रेज़ी, संस्कृत आदि से लिए गए हैं तथा अनेक नए शब्द बनाए गए हैं। स्वतन्त्रता के पूर्व हिन्दी में मुश्किल से 5-6 हज़ार पारिभाषिक शब्द थे, किन्तु अब उनकी संख्या एक लाख से ऊपर है और दिनों-दिन उसमें वृद्धि होती जा रही है। हिन्दी शब्द-भंडार अनेक प्रभावों को ग्रहण करते हुए तथा नए शब्दों से समृद्ध होते हुए दिनों-दिन अधिक समृद्ध होता जा रहा है, जिसके परिणामस्वरूप हिन्दी अपनी अभिव्यंजना में अधिक सटीक, निश्चित, गहरी तथा समर्थ हो जा रही है।

साहित्य में प्रयोग -

आधुनिक काल राजनीति का है। अतः भारतीय राजनीति के केंद्र दिल्ली की भाषा खड़ीबोली, ब्रज, अवधी आदि को पीछे छोड़ प्रायः हिन्दी क्षेत्र की साहित्यिक अभिव्यक्ति

का एकमात्र माध्यम बन गई है। अन्य बोलियों में यदि कुछ लिखा भी जा रहा है तो अपवादस्वरूप।

1.6.3 प्रयोजनमूलक हिन्दी :

प्रयोजनमूलक हिन्दी में प्रयुक्त 'प्रयोजन' शब्द का कोशीय अर्थ है - उद्देश्य। प्रयोजनमूलक शब्द हिन्दी की उस विशेषता की ओर संकेत कर रहा है जो हिन्दी में किसी विशिष्ट प्रयोजन या उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रयोग स्तर पर वर्तमान होती है। जिस भाषा-रूप का प्रयोग किसी विशिष्ट प्रयोजन की पूर्ति हेतु किया जाता है; उस भाषा-रूप को प्रयोजनमूलक भाषा (Functional Language) कहा जाता है।

प्रयोजनमूलक हिन्दी का मुख्य लक्ष्य है - जीविकोपार्जन के विविध क्षेत्रों में प्रयुक्त होने वाले भाषा-रूपों को प्रस्तुत करना। विभिन्न व्यवसायों से संबन्धित व्यक्तियों जैसे व्यापारी, पत्रकार, डॉक्टर, वकील, प्रशासक, वैज्ञानिक आदि के कार्य-क्षेत्रों में प्रयुक्त विशिष्ट हिन्दी का भाषा-रूप ही 'प्रयोजनमूलक हिन्दी' कहलाता है।

प्रयोजनमूलक हिन्दी के प्रमुख आयाम :

1.प्रशासनिक हिन्दी

2.व्यावहारिक हिन्दी

3.वाणिज्य की हिन्दी

4.वैज्ञानिक तकनीकी एवं प्रौद्योगिकी की हिन्दी

5.संचार माध्यमों की हिन्दी

6.विज्ञापन की हिन्दी

7.हिन्दी कम्प्यूटिंग

इनके अंतर्गत आनेवाली हिन्दी के मुख्य तत्व :

1.प्रशासनिक हिन्दी : प्रशासनिक शब्दावली, प्रारूप लेखन, प्रशासनिक पत्राचार, टिप्पण लेखन, प्रतिवेदन लेखन, संक्षेपण।

2.व्यावहारिक हिन्दी : कार्यालयी पत्र, ज्ञापन, परिपत्र, आदेश, पृष्ठांकन, सूचनाएँ, रिक्त पदों की पूर्ति हेतु विज्ञप्ति, शिकायत निवारण, पदनाम, अनुभाग।

3.वाणिज्य की हिन्दी : बैंक - संबंधी पत्राचार, बीमा संबंधी पत्राचार, बैंक एवं बीमा क्षेत्रों की टिप्पणियाँ, बैंकों एवं बीमा संबंधी शब्दावली।

4.वैज्ञानिक तकनीकी एवं प्रौद्योगिकी की हिन्दी : वैज्ञानिक तकनीकी एवं प्रौद्योगिकी की शब्दावली एवं प्रयुक्तियाँ, विधि, संसद, रक्षा आदि क्षेत्रों की हिन्दी, हिन्दी में वैज्ञानिक तकनीकी एवं प्रौद्योगिकी लेखन।

5.संचार माध्यमों की हिन्दी : जनसंचार-प्रिंट मीडिया, इलैक्ट्रोनिक मीडिया, समाचार लेखन, संपादकीय, जन संचार की शब्दावली।

6.विज्ञापन की हिन्दी : दृश्य-श्रव्य माध्यमों में विज्ञापन का रूप।

7.हिन्दी कोम्प्यूटिंग : कम्प्यूटर का परिचय, उसकी कार्य-प्रणाली, उपयोगिता एवं भविष्य में उसकी संभावनाए, इन्टरनेट आदि की जानकारी आते हैं।

इस प्रकार हिन्दी ने अपने उद्‌भव से आज तक लम्बी विकास-यात्रा तय की है। ध्वनि, व्याकरण, रूप-रचना, वाक्य-रचना, शब्द-भंडार आदि सभी दृष्टियों से हिन्दी स्वयं को युगानुकूल बनाने में सफल रही है। यह सत्य है कि आज हिन्दी पर अंग्रेज़ी भाषा का अत्यधिक प्रभाव दृष्टिगत होता है, परंतु आज विश्व 'लघु विश्व' में परिवर्तित हो गया है अतः इस प्रकार के प्रभाव को नितांत अवांछित नहीं माना जा सकता। अपने विकास-क्रम

में हिन्दी ने अनेक हिंदीतर भारतीय भाषाओं से भी प्रभाव ग्रहण किया है। यह प्रभाव हिन्दी को राष्ट्रीय स्तर पर पूर्ण मान्यता दिलाने के प्रयास की दृष्टि से आवश्यक भी है।

पाद टिप्पणी :

1.मिश्र, डॉ॰ नरेश (2014), *भाषाविज्ञान (भाग-1*), निर्मल पब्लिकेशन्स्, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ॰ 27

2.श्रीवास्तव, गरिमा (2006), *भाषा और भाषाविज्ञान*, संजय प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ॰ 6

3. मिश्र, डॉ॰ नरेश (2014), *भाषाविज्ञान (भाग-1),* निर्मल पब्लिकेशन्स्, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ॰ 16

4. मिश्र, डॉ॰ नरेश (2014), *भाषाविज्ञान (भाग-1),* निर्मल पब्लिकेशन्स्, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ॰ 16

5. श्रीवास्तव, गरिमा (2006), *भाषा और भाषाविज्ञान*, संजय प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ॰ 5

6. श्रीवास्तव, गरिमा (2006), *भाषा और भाषाविज्ञान*, संजय प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ॰ 6

7. श्रीवास्तव, गरिमा (2006), *भाषा और भाषाविज्ञान*, संजय प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ॰ 6

8. मिश्र, डॉ॰ नरेश (2014), *भाषाविज्ञान (भाग-1),* निर्मल पब्लिकेशन्स्, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ॰ 16

9. मिश्र, डॉ॰ नरेश (2014), *भाषाविज्ञान (भाग-1),* निर्मल पब्लिकेशन्स्, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ॰ 16

10. श्रीवास्तव, गरिमा (2006), *भाषा और भाषाविज्ञान*, संजय प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ॰ 6

11. श्रीवास्तव, गरिमा (2006), *भाषा और भाषाविज्ञान,* संजय प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ॰ 6

12. श्रीवास्तव, गरिमा (2006), *भाषा और भाषाविज्ञान*, संजय प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ॰ 6

13. श्रीवास्तव, गरिमा (2006), *भाषा और भाषाविज्ञान*, संजय प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ॰ 6-7

14. श्रीवास्तव, गरिमा (2006), *भाषा और भाषाविज्ञान*, संजय प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ॰ 7

15. श्रीवास्तव, गरिमा (2006), *भाषा और भाषाविज्ञान*, संजय प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ॰ 7

16. मिश्र, डॉ॰ नरेश (2014), *भाषाविज्ञान (भाग-1),* निर्मल पब्लिकेशन्स्, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ॰ 16

17. मिश्र, डॉ॰ नरेश (2014), *भाषाविज्ञान (भाग-1),* निर्मल पब्लिकेशन्स्, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ॰ 17

18. मिश्र, डॉ॰ नरेश (2014), *भाषाविज्ञान (भाग-1),* निर्मल पब्लिकेशन्स्, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ॰ 17

19. मिश्र, डॉ॰ नरेश (2014), *भाषाविज्ञान (भाग-1),* निर्मल पब्लिकेशन्स्, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ॰ 17

20. मिश्र, डॉ॰ नरेश (2014), *भाषाविज्ञान (भाग-1),* निर्मल पब्लिकेशन्स्, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ॰ 17

21. मिश्र, डॉ॰ नरेश (2014), *भाषाविज्ञान (भाग-1),* निर्मल पब्लिकेशन्स्, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ॰ 17

22. मिश्र, डॉ॰ नरेश (2014), *भाषाविज्ञान (भाग-1),* निर्मल पब्लिकेशन्स्, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ॰ 17

23. मिश्र, डॉ॰ नरेश (2014), *भाषाविज्ञान (भाग-1),* निर्मल पब्लिकेशन्स्, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ॰ 18

24. श्रीवास्तव, गरिमा (2006), *भाषा और भाषाविज्ञान*, संजय प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ॰ 5

25. श्रीवास्तव, गरिमा (2006), *भाषा और भाषाविज्ञान*, संजय प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ॰ 5

26. श्रीवास्तव, गरिमा (2006), *भाषा और भाषाविज्ञान*, संजय प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ॰ 5

27. श्रीवास्तव, गरिमा (2006), *भाषा और भाषाविज्ञान*, संजय प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ॰ 5

28. श्रीवास्तव, गरिमा (2006), *भाषा और भाषाविज्ञान*, संजय प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ॰ 5

29. श्रीवास्तव, गरिमा (2006), *भाषा और भाषाविज्ञान*, संजय प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ॰ 11

30. श्रीवास्तव, गरिमा (2006), *भाषा और भाषाविज्ञान,* संजय प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ॰ 17

31. मिश्र, डॉ॰ नरेश (2014), *भाषाविज्ञान (भाग-1),* निर्मल पब्लिकेशन्स्, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ॰ 57